अरुणोदय

ऐतिहासिक उपन्यास

लेखक

ओंकारनाथ दिनकर

प्रकाशक

कृष्णा ब्रदर्स, अजमेर

अरुणोदय

ऐतिहासिक उपन्यास

लेखक

ओंकारनाथ दिनकर

प्रकाशक

कृष्णा ब्रदर्स, अजमेर

प्रकाशक
जयकृष्ण अग्रवाल,
कृष्णा ब्रदर्स, महात्मा गाँधी मार्ग,
अजमेर

मूल्य
रु० ४–५०

मुद्रक
एच. सी. कपूर
टाइम्स प्रिंटिंग प्रेस, ब्रह्मपुरी,
अजमेर

पूर्वपीठिका

भारत-वसुन्धरा का पश्चिमी प्रदेश—महाराष्ट्र !

महाराष्ट्र-प्रदेश की सीमाएँ त्रिभुज की सी आकृति बनाती हैं। इस प्रदेश की मूलरेखा के चरण दमण से लेकर कारावार तक अरब सागर पखारता है। इस मूलरेखा से मिलानेवाली दोनों रेखायें नागपुर तक चली जाती हैं। उत्तर से दक्षिण की ओर महाराष्ट्र-प्रदेश में पश्चिमी घाट की पर्वतमाला युगयुगान्तर से एकरूप हो खेल रही है। इस पर्वतमाला ने उत्तर तथा दक्षिण–दो भागों में इस भूमि को विभाजित कर दिया है। इसकी पश्चिमी भूमि नीची, उपजाऊ और नम है। पूर्व भाग का जलवायु न अधिक नम और न अधिक उष्ण—मध्यम है। इस भाग की अधिकांश भूमि ऊसर—कहीं चट्टानबहुल तो कहीं मिट्टीबहुल है। इस विशाल धरती के निवासी मराठा कहे जाते हैं। इस पर्वतमाला की पूर्वी छाया में पर्वतों से आवृत्त अनेक संकीर्ण घाटियाँ हैं। मराठा-शक्ति की जनक अनेक जातियों का प्रादुर्भाव इन घाटियों में हुआ है। इन संकीर्ण घाटियों में, अनेक वीर माताओं ने अपनी यशस्विनी-निर्मल कुक्षों को पुष्पित कर अनेक सन्त, विचारक, तत्त्वज्ञानी एवं राष्ट्रीय उन्नायकों को जन्म देकर

उन्हें गौरवान्वित किया है । यह महाराष्ट्रमही, एक बार नहीं, अनेक बार उपकृत हुई है, धन्य हुई है ।

इसी मही में—सैनिक-नरेश, मराठा-साम्राज्य का अधिष्ठाता–ऊसर भूमि का एक सुरभित पुष्प खिला और उसकी सुरभि से समस्त भारत भूखण्ड—भारतमाता गद्‌गद हो गई । महाराष्ट्र का ही नहीं अपितु भारत-वसुन्धरा का समाज, उसकी संस्कृति समृद्ध और सुरक्षित रही । आक्रमणकारियों के, इस मही ने संघर्ष झेले, उन्हें यश-शक्ति-विमुख किया और स्वयं को गौरवान्वित किया ।

इस पुण्यसलिला मही पर मालोजीराजे, शाहजीराजे, शिवाजी-राजे, सम्भाजीराजे, सन्त ज्ञानेश्वर, सन्त शिरोमणि तुकाराम, समर्थ गुरु रामदास, प्रभृति हुए । प्रथम तीन मराठे वीर भोंसलों में अग्रणी रहे ।

विक्रम की सोलहवीं शताब्दि का द्वितीय चरण समाप्त हो चुका था, तीसरा चरण आगे बढ़ रहा था । मालोजी बाबाजी नामक भोंसले के ज्येष्ठ पुत्र थे, बिठोजी उनसे छोटे । मालोजी और बिठोजी के नामों के आगे राजे शब्द उसी काल में जुड़ गया था ।

मालोजीराजे के पूर्वजों ने गोदावरी और भीमा नदियों के प्रदेश में दौलताबाद के निकट बेरूल—ऐलोरा तथा कुछ दूसरे ग्रामों को क्रय करके वहाँ की मुखियागिरी अथवा पाटिलकी का विरुद धारण कर लिया था । ये पूर्वज भोंसले सैनिक-वृत्ति तथा कृषि-कर्म दोनों ही अपनाये हुए थे । सैनिक-धर्म उन्होंने अहमदनगर की निजाम शाही के अन्तर्गत ग्रहण किया । उनका समस्त परिवार उद्यमी था और अपनी सूझबूझ के लिये प्रख्यात था । आत्माभिमान और प्रबल इच्छा-शक्ति उनका जैसे जन्म-सिद्ध अधिकार बन चुका था ।

यह भोंसला-परिवार मेवाड़मही से सम्बन्धित था । वहाँ से बनवीर को पलायन करना पड़ा तो उसने नागपुर में आकर शरण ली । यहीं से भोंसलों का अभ्युदय हुआ । एक दूसरी किम्वदन्ती यह भी है,

अलाउद्दीन खिलजी ने एक समय मेवाड़मही को जब विजित कर लिया तो भोंसावत जागीर के स्वाभिमानी क्षत्रिय-वीर सज्जनसिंह ने मेवाड़ की पराजित भूमि पर जीवन-यापन करना अपमानजनक और अपनी-प्रतिष्ठा-गौरव के विपरीत समझा । सज्जनसिंह ने वहाँ से दाक्षिणात्य प्रदेशों में आकर, प्रारम्भ में तोअपनी भटकन ही स्वीकार की किन्तु बाद में क्षत्रियोचित सैनिकवृत्ति धारण कर, यहाँ के शासकों की सेवा में वह अपनी करवाल के जौहर प्रतिष्ठित करता रहा । कालान्तर में उसके पाँचवें वंशज उग्रसेन के दो पुत्र, कर्णसेन तथा शुभकर्ण हुए । कर्णसेन बहमनी सुल्तान की सेवा में नियुक्त हो गया और राजा घोरपड़े की उपाधि तथा मुधौल में चौलसी आदि ग्रामों की जागीरी (पाटिल-गिरी) से अलंकृत हुआ । शुभकर्ण के वंशज भोंसले कहलाए । इसी शुभकर्ण के एक पुत्र का नाम बाबाजीराजे था । बाबाजीराजे (भोंसले) से मालोजी की उत्पत्ति हुई ।

इस समय उत्तर भारत में मुग़ल-सत्ता का भानु भास्वर हो रहा था । उसकी किरणों में प्रखरता, तेजस्विता फूटने लगी थी । अकबर, जहाँगीर, शाहजहाँ का युग दक्षिण के मुसलमानी सुल्तानों को आतंकित कर रहा था—यथावसर तीनों सम्राटों ने अपनी विजय-दुन्दुभि के स्वर निनादित किये । उनके अरबी और तुर्की घोड़ों की टापों से दक्षिण का प्रदेश निरन्तर रौंदा जा रहा था । युगयुग से भारत महाद्वीप के उत्तरी और दक्षिणी अर्ध-भागों की मुख्य सीमारेखा-नर्मदा की जलधारा-अर्गला है । इस जलधारा को पार कर उत्तर के प्रतिद्वन्द्वी को दाक्षिणात्यों पर आधिपत्य करने ताप्ती सरिता के तट पर स्थित बुरहानपुर और उसका दुर्भेद्य असीरगढ़ रोकता है । यदि आगे बढ़े तो दौलताबाद, ऐलोरा और औरंगाबाद का क्षेत्र तथा बुरहानपुर के दक्षिण में अहमदनगर । इस प्रकार बुरहानपुर, औरंगाबाद और अहमदनगर युद्धस्थली की प्रमुख अर्गलाएँ हैं—यह प्रदेश विकट संघर्षों की भूमि है

जो अपने चतुर्दिक् मुग़लों के अभियान और मराठा-शक्ति के अभ्युदय की गाथा कहती है।

इस सन्दर्भ में उल्लेख्य हैं, देवगिरि के पदच्युत राजवंशीय लुकजी यादवराव, शक्ति-सम्पन्न और मेधावी सामन्त, जो अहमदनगर निजामशाही की राजसत्ता में अपना वर्चस्व अहर्निश बढ़ा रहे थे। यह भी कहिये, निजामशाही की सेवा में लुकजी यादवराव प्रथम कोटि के सामन्तपद पर प्रतिष्ठित थे। इतना ही क्यों, दाक्षिणात्य राजनीति में वे बहुचर्चित और प्रभावशाली व्यक्तित्व-पुरुष थे। उनका वैभव सुल्तानों से प्रतिस्पर्द्धा लिये हुए था। भ्रातृव्य मालोजीराजे तथा बिठोजीराजे को लुकजी के आधीन सेवा करने का अवसर प्राप्त था। मेवाड़मही से आकर बसनेवाले अपने पूर्वजों के समान ही शिवाजी भोंसले के पितामह मालोजीराजे ने भी सैनिकवृत्ति को धारण कर लिया था। निजामशाही-वंश का तत्कालीन सुल्तान भी उनकी अभ्यर्थना करता रहता था। सुल्तान ने मालोजीराजे को अपनी परिषद् में एक प्रतिष्ठित सैनिकपद भी दे दिया था। उस विभूषण से अलंकृत होकर वे लुकजी के समान ही सुल्तान के दक्षिणांग बने रहे—उनके लिये युद्ध किये, राज्य-विस्तार किया और मुग़ल-सत्ता से संघर्ष लेते रहे, जूझते रहे। इस समय दाक्षिणात्य मुस्लिम शासकों पर मुग़ल-सम्राट् अपना आंतक स्थापित किये हुए थे। सुल्तान कहने भर को मुग़लों की अधीनता स्वीकार कर चुके थे किन्तु वे सब करते अपनी मनमानी थे। बीजापुर और अहमदनगर उनके अगुआ बने हुए थे। अस्तु, दाक्षिणात्य मुस्लिम शासक मराठा-हिन्दू वीरों को—युद्धवीरों को अपनी परिषद् में उच्च पद देकर सम्मानित करते रहे, फलतः वे मुग़लों से उनका संरक्षण करते रहे। इस कालक्रम में अहमदनगर में सुल्तान निजामशाह सत्तारूढ़ था। उसका मुस्लिम सैन्य-नायक अम्बर मलिक था। सुल्तान की भाँति यह भी नीति-निपुण एवं दूरंदेशी व्यक्ति था।

यह कहना भी अप्रासांगिक न होगा कि इस शती में विजयनगर का हिन्दू साम्राज्य अपने चरम वैभव, समृद्धि की स्मृति दिला रहा था, उसके पश्चात् बहमनी राज्य था किन्तु बहमनी राज्य का विघटन पाँच राज्यों में विकेन्द्रित हो चुका था—(१) बरार का इमादशाही राजवंश, (२) अहमदनगर का निजामशाही राजवंश, (३) बीजापुर का आदिलशाही राजवंश, (४) गोलकुण्डा का कुतुबशाही राजवंश, और (५) बीदर का बरीदशाही राजवंश। विजयनगर का हिन्दू साम्राज्य इन सुल्तानों की आँखों में शूल की तरह खटकता रहा।

इस्लाम, मुग़ल और मराठा-शक्ति का संघर्ष चल रहा था—मराठा शक्ति एक उदीयमान शक्ति के रूप में उठ रही थी। मालोजीराजे का स्वप्न, शाहजी भोंसले की स्वप्नसिद्धि अपनी जड़ें जमा रहे थे। युग बीत रहे थे, युगों का निर्माण हो रहा था, अभ्युदय······अभ्युदय! प्रभात—जीवन-प्रभात का रूप ले रहा था। युग-सत्य की फसल पल्लवित हो रही थी जिसे काटने एक सैनिक-नरेश बढ़ रहा था, आह्लादित हो रहा था, उसने जीवन-प्रभात देखा······उसने विद्रोह के सूत्र पकड़े, मातृभूमि को स्वतन्त्र, समृद्ध करने का संकल्प लिया और उसने उस युग-सत्य की फसल को काटा—भोगा···

प्रस्तुत है उसकी वीरगाथा···

एक

विक्रम की सत्रहवीं शती के अन्तिम चरण का चतुर्थांश और फाल्गुनी पूर्णिमा। बूढ़ा-शीत विदा ले रहा था। ग्रीष्म-शिशु अहमदनगर के जनजीवन को आह्लादित कर रहा था। सुदूर पश्चिमी आकाश में चन्द्रमा होलिका-दहन के दर्शन कर, तृप्त हो, समाधि में लीन होने का संकल्प ले चुका था और बालरवि की सुहावनी स्वर्ण किरणें, होलिका-अम्बार के सुलगते अवशेषों को देखने का लोभ सवंरण नहीं कर पा रही थीं। इन अवशेषों में अब भी एक सत्य विद्यमान था, उसी सत्य का दर्शन बाल-रश्मियाँ करने को व्यग्रतापूर्वक, नगर की गगनचुम्बी अट्टालिकायें, यद्यपि उनका अवरोध कर रही थीं, फिर भी अपना वर्चस्व सर्वत्र फैलाती चली आ रही थीं—राजपथ, वीथियाँ और गृह-प्रांगणों में बलात् प्रविष्ट होती चली जा रही थीं। गृह-प्रांगणों में भी तो होलिका-दहन के पश्चात् स्थिर सत्य विद्यमान हो चुका था—युग-युग उसे प्रतिष्ठित करता आया था। चर-अचर सभी स्वीकार कर चुके थे कि ये भस्मावशेष सत्य की विजय के प्रतीक हैं। दैत्यराज हिरण्यकश्यपु ने अपने ही राम-भक्त पुत्र प्रह्लाद को भस्म करने का षड्यंत्र रचा था। होलिका दैत्यराज की प्रिय और आज्ञानुवर्तिनी भगिनी थी। हिरण्यकश्यपु ने अपने पुत्र का, जीवित-अग्नि संस्कार करने

का ग्रादेश दे दिया था। होलिका को ग्रौर उसके भ्राता को विश्वास था, अग्नि-जिह्वायें उसे छू तक नहीं सकेंगी, और बालक को वे ज्वालायें लील जायेंगीं। किन्तु हुग्रा इसके नितान्त विपरीत, होलिका जिसने दुष्कर्म का पक्ष लिया था भस्म हो गई थी और सुकर्मों का अनुगामी प्रह्लाद उस महाग्नि से सकुशल जीवित बच गया था। पाप ग्रौर दुष्कर्म भस्मीभूत हो गये थे और पुण्यकर्म विजयी हुए थे। प्रह्लाद ने राम-नाम का उच्चारण किया था। उसका ग्रन्तःवासीराम जो कहता वही पढ़ता, वही लिखता। राम-नाम की महिमा उस पर पूर्णतः प्रकट हो चुकी थी। मन का राम यदि सच्चा है तो उसको संसारी-अग्नि जला नहीं सकती, ग्रथाह समुद्र उसे गला नहीं सकते। विपदायें सत्पथी के लिये फूल बन जाती हैं, उसका मार्ग प्रशस्त करती हैं और उसे यशस्विता ग्रर्पण करती हैं, उसके सम्मुख शक्ति-मद विनत होता है। हिरण्यकश्यपु अपने सृजन-पालनहार ईश्वर-राम को भूल गया था। उसका शक्तिमद, उसका अहंकार, उसका दर्प सीमातीत हो चुके थे। वह अपना, केवल अपना वर्चस्व देखना चाहता था। प्रजा का सृजक, पालक और मारक वही बन रहा था। वह एक दम्भ ओढ़ चुका था। लोक-अपयश की गठरी, वह शासक बाँध चुका था। ग्रतः उस होलिका-दहन का परिणाम देख-सुनकर जन-जन हर्षित हुआ था कि इस ग्रग्नि में प्रह्लाद, सत्य का अन्वेषी तप कर खरा सोना उतरा ग्रौर पाप की गठरी, भस्म हो गई होलिका भस्म हो गई थी। प्रह्लाद का बाल भी बाँका नहीं हुग्रा था। असत्य मार्ग के पथिक की सहोदरा का वरदान भी, ग्रसत्य मार्ग का अनुकरण करने के कारण नष्ट हो गया था। राजपथ और वीथिकाओं में जहाँ भी होलिका-दहन हुआ था, ग्राबाल-वृद्ध नर-नारी, जो भी उसके समीप से निकालता श्रद्धा के पुष्प, सत्य के प्रतीक, उन अवशेषों पर अर्पित करता, नमन करता और तब ग्रागे बढ़ता। यह किम्बदन्ती जैसे सत्य हो गई थी और आज वह स्मरण दिलाने के लिये पुनः, वर्ष भर पश्चात् आई है। फिर

बाल-रश्मियाँ उन पावन अवशेषों का दर्शन क्यों नहीं करें ? अब धूप विहँस रही थी। घरों से बालकों की टोलियाँ बाहर निकल पड़ीं थीं। क्यों ? किसलिये ? रंग का फाग खेलने—उनमें हर्ष और उन्माद प्रह्लाद-विजय से भर गया था।

वयस्क जनसमुदाय भी अपनी संस्कृति और परम्परा की पुनर्रचना करने आगे बढ़ रहा था। कृषकों के खेत गेहूँ, जौ और चनों के पौधों से लहलहा रहे थे। गेहूँ और जौ की बालों ने सुनहरा रूप ले लिया था। चना अर्धपक्व अवस्था में हो आया था। कृषकवर्ग हर्षित था। ब्राह्मण-वर्ग नवान्नेष्टि यज्ञ सम्पन्न करा चुका था। खेत—लहलहाते खेत, अन्न से भरे खेत सबको आनन्दित कर रहे थे। तब हर्ष और आनन्द का वातावरण क्यों न भरता उनमें ? सर्वत्र आनन्द, उमंग, उल्लास, और मादकता छायी हुई थी।

होलिका-दहन रात्रि के प्रथम चरण में ही सम्पन्न हो गया था। राजपथ पर जलने वाली होली अभी तक पूर्णतः बुझी नहीं थी, क्योंकि तुलना में यह अन्य होलियों में विशाल थी। कहीं कुछ काष्ठ-पिण्ड सुलग रहे थे, कहीं किसी काष्ठ से धुँआँ उठ रहा था, कहीं कुछ नारियल अधजले, उदास पड़े थे। एक नारिकेल तो अग्नि की लपटों से मात्र झुलसा भर था, उसकी जटायें कठिनाई से कुछ-कुछ जल पाई थीं। एक बाल-टोली इस होली-स्थान पर आई और एक बालक ने, जो आयु में अपने साथियों से सब में छोटा था, दौड़ कर उस नारियल को उठा लिया। वह हर्ष से चिल्ला उठा—

"नारियल ! नारियल ! इसकी गिरी खायेंगे !"

और वह नारियल तोड़ने के लिये किसी प्रस्तर-खण्ड को ढूँढ़ने चला कि एक वयस्क साथी ने उससे कहा—

"माता का भोग है यह !"

"माता का भोग ?"

बालक की जिज्ञासा बढ़ी। उसने फिर दुहराया—

'माता का भोग ?'

'हाँ, होली-माता का भोग है, यह नारिकेल। छोड़ दो उसी स्थल पर !"

बालक हतप्रभ हो गया, उसने तृष्णाभरी दृष्टि नारिकेल पर डाली। उसे लगा, साथी उसे बहका रहा है। उसने नारियल को दृढ़ता से पकड़ लिया। वयस्क ने फिर कहा—

"शाहजी, होली माता रुष्ट हो जायेंगी ! माता का भोग हम नहीं लेते !"

"माँ का प्रसाद तो लेते हैं। कलरात्रि मिष्ठान्न और गेहूँ-जौ की बालें प्रसाद में मिली थीं।"

मालोजी भोंसले के पुत्र शाहजी ने अपना मत स्थिर करने की चेष्टा की।

'माँ का प्रसाद तो ग्राह्य होता है। होलिका-दहन होते ही जो प्रसाद मिला था, उसमें माँ का आशीर्वाद मिला हुआ था, शाहजी। इसमें माँ का आशीर्वाद नहीं है। भक्ष्याभक्ष्य का ध्यान तो रखना पड़ता हैं, शाहजी !"

छोटा शाहजी चिन्ता में पड़ गया। उसने पूछा—

"तब इसका क्या होगा गोपाल ?"

"यह अधजला नारिकेल शीतला माता के दिन तक यहीं रहेगा।"

गोपाल ने शाहजी का जैसे समाधान कर दिया !

"हाँ,हाँ, यह नारियल नहीं लेंगे !"

कई स्वर एक साथ उभरे किन्तु वायु का प्रबल वेग उन बाल-स्वरों को लील गया। शाहजी ने आवाक् हो नारिकेल उन अवशेषों में धीरे से रख दिया ! उसने अविनय का प्रदर्शन नहीं किया। मित्रों का

परामर्श उसे प्रिय लगा। उसमें विजय-भावना अवश्य थी किन्तु अहंकार नहीं था।

गोपाल ने कहा—"चलो शाहजी, यादवराव प्रधान के यहाँ। आज रंग जमेगा वहाँ!"

सबने स्वर में स्वर मिलाया—

"हाँ, हाँ, हाँ! चलो! चलो!!"

सबकी आँखें चौड़ी हो गई थीं। सबके हाथ अपनी-अपनी हथेली पर मुड़ गये थे। उनकी अभिनीत मुद्रा दर्शनीय थी। सहसा एक स्वर उठा—

"लुकजी यादवराव!"

"लुकजी यादवराव का नाम लेते ही शाहजी को जैसे कुछ स्मरण हो आया! वह चिन्ताग्रस्त होने लगा। कारण यह था, उसके पिता मालोजी भोंसले ने शाहजी से कहा था कि यादवराव के प्रासाद में होली का फाग खेलने जाना है, और वह भी उनके साथ चलेगा! किन्तु वह तो अन्य बालकों के साथ निकल आया था, पिता क्रुद्ध होंगे। पिता की आज्ञा की अवहेलना उसे कचोटने लगी।

सहसा उसका ध्यान कौंधा, वह पिता से पहले लुकजी यादवराव के यहाँ पहुँच जाएगा फिरतो पिता रुष्ट नहीं होंगे? जैसे ही अन्य साथी बढ़े, वह भी उनके पीछे हो लिया।

नव चैत्र का प्रथम दिवस! रंग प्रतिपदा! कामदेव की पूजा-अर्चना का मास था। कामदेव अपनी छटा जनमानस में बिखेर रहे थे। बाल-मण्डलियाँ इधर से उधर आ-जा रही थीं। किसी के पास गुलाल था तो किसी के पास रंगभरी पीतल-काँसे की पिचकारियाँ थीं। पिचकारियों पर आकर्षक चित्रकारी चित्रित की हुई थी। एक बाल टोली राजपथ के दूसरी ओर से आकर पहली टोली में मिल गई। टोली में एक बालक ने राधा का वेश धारण कर रखा था तो एक दूसरा

बालक कृष्ण बना हुआ था। मोर-मुकुट उसके सिर पर था और हाथ में पीतल की चित्रांकित आकर्षक बाँसुरी थी। हर्ष और उल्लास सबकी आकृतियों पर छाया हुआ था। राजपथ के एक ओर लुकजी यादवराव का विशाल भवन था। उसके शिखर पर स्वर्ण का कलश चढ़ा हुआ था। उसके बड़े-बड़े गवाक्ष थे, उन पर उत्कीर्ण काष्ठ-कला आकर्षक थी। स्तम्भों पर हाथी-घोड़े और देवी-देवताओं की आकृतियाँ खुदी हुई थीं और कक्ष की भित्तियाँ नाना प्रकार के रंगों से रँगी हुई थीं।

लुकजी-प्रासाद के विशाल प्रांगण में आवागमन चल रहा था। कुछ राजनयिक व्यक्ति भी उनमें सम्मलित थे, सामान्यजन भी उनमें थे। कुछ निमंत्रित गण थे तो कुछ अनिमंत्रित भी थे। हिन्दुओं का प्रत्येक पर्व यहाँ सोल्लास मनाया जाता था। ऊँच-नीच का भेदभाव कैसा ? इस उत्सव में निमंत्रण की चिन्ता कैसी ? छोटे-बड़े का भाव कैसा ? सांस्कृतिक पर्व तो एकता के सूत्र हैं। सांस्कृतिक परम्पराएँ और पर्व तो सामाजिकों को एक सूत्र में बाँधते आए हैं। पारस्परिक वैमनस्य तक इन दिनों भुला दिया जाता है। ऐसे पर्वों पर विद्वेष और वैमनस्य को विदा कर—अभिशाप दे, जनजन नव-मिलन, नूतन अभिनन्दन का आशीर्वचन, एक दूसरे को देता है। परस्पर का बढ़ा हुआ मन का मैल तक ऐसे पर्व-त्यौहारों पर धुल जाता है। जाने-अनजाने यदि कभी किसी के प्रति अशोभनीय व्यवहार बन जाता है तो पारस्परिक क्षमा-याचना-पर्व उसे दूर कर देता है। क्षमा-याचना के मधुर मंत्र ग्रहण करने से विरोधी भी एक हो जाते हैं। कितना मीठा ! कितना सुन्दर ! कितना महान् है क्षमा-याचना का मंत्र !

यादवराव के विशाल प्रासाद-भवन के पृष्ठ भाग की ओर घण्ट-ध्वनि उभरी और निरन्तर नौ की संख्या गिना गई। अब बाल-रवि की किरणें प्रासाद के स्फटिक-पाषाण निर्मित प्रांगण में अपना साम्राज्य जमाने लगी थीं। सूर्य की किरणों में मंदिर का स्वर्ण कलश झिल-

मिलाने लगा था। यह मंदिर यादववंशी लुकजी की इष्टदेवी का था। इस मंदिर का आकार अधिक विशाल नहीं था। प्रासाद की कुल-वधुएँ एवं पुत्रियाँ यहाँ अर्चन-पूजन करती थीं। मंदिर के द्वार के कपाट रजत के बने हुए थे। भीतर देवी की ताम्र-निर्मित प्रतिमा तेजोमयी दीख रही थी। प्रांगण में धवल वस्त्र बिछा हुआ था। आगन्तुक मंदिर में प्रतिष्ठित देवी की सामान्य वन्दना करते, प्रांगण में बैठते और परस्पर चर्चा में निरत हो जाते थे। बालमंडली जो राजपथ से होती हुई आई थी, एक ओर बैठ गई। उच्छृंखलता अथवा बाल-सुलभ चपलता भी उसमें दिखाई नहीं देती थी। सबके मुखों पर गम्भीरता की छाप गहरी होती जा रही थी। गोपाल और शाहजी समीप बैठे थे। वे एक दूसरे से संकेतों में ही बातें कर लेते थे। नगर के एक बड़े अधिकारी का यह आवास है, वह प्रभाव बाल-मंडली पर छाया हुआ था। पश्चिमी द्वार से निकलकर गृह-स्वामी लुकजी यादवराव तथा उनके अन्य पुरुष-परिजन आए। लुकजी ने कौशेय अँगरखा पहन रखा था। सफेद काली किनारी की धोती कमर से एड़ी तक बँधी थी। उसमें कुछ सलवटें स्पष्ट दिखाई दे रहीं थी जो भली लग रही थीं। उन्होंने सिर पर लाल पगड़ी बाँध रखी थी। पगड़ी ऊपर से चपटी थी। इससे मिलती-जुलती ही वेशभूषा उनके परिवारजनों की थी। लुकजी का रंग साँवला था। लुकजी और उनका परिवार एक ओर बढ़ा, उपस्थितजन खड़े हो गये। और उन्होंने प्रधान-परिजनों का अभिनन्दन किया। लुकजी तथा अन्य जन उनका अभिनन्दन स्वीकार करते हुए अपने-अपने स्थान पर बैठ गये। सामाजिक और शासक एक दीख रहे थे। स्फटिक स्तम्भों पर जड़ी हुई रत्नमणियों पर धूप गिरने लगी थी, मणियों की चमक दूर-दूर तक छाने लगी। बड़ा मनोरम दृश्य लगने लगा। प्रांगण में सुहावनी भावनाएँ जैसे क्रीड़ा करने लगीं। मधुर-मिलन की अद्भुत झाँकी स्थिर हो चली थी, फिर भी नागरिकों का ताँता अभी तक

लगा हुआ था । कुछ प्रतिष्ठितजन अकेले आ रहे थे तो सामान्यजन समूह में । वे सब अपना-अपना स्थान पाने को इधर-उधर देखते और जहाँ स्थान देखते जम जाते । मालोजीराजे आए तो उन्होंने अपनी दृष्टि चारों ओर घुमाई । वे कुछ ढूँढ़ रहे हों ऐसी उनकी मुद्रा थी । मालोजी ने अभिवादन कुछ ऊपरी मन से ही किया—वे अपने पुत्र शाहजी को देख रहे थे । सहज ही बाल-मण्डली के मध्य उन्हें शाहजी दीख गये तो वे जैसे स्वस्थ हो गये । देखते ही देखते पौरजनों से प्रांगण भर गया । सम्भवतः अब और प्रतीक्षा की आवश्यकता नहीं थी । इसी बीच लुकजी परिवार की तथा अतिथियों में-से अनेक भद्र पुरुषों की महिलाएँ आकर प्रमदा कक्ष में बैठ गईं । सुल्तान-परिवार की भी कुछ प्रमुख बेगमें और उनकी परिचारिकाएँ उपस्थित हो चुकीं थीं । इधर-उधर देख, लुकजी यादवराव खड़े हो गये । इसी बीच आगन्तुकों ने उनका साथ दिया । लुकजी खड़े-खड़े मुस्करा रहे थे । उनकी दृष्टि फैलती जा रही थी । लुकजी की इस मुस्कान का अधिकारी तो समस्त आगन्तुक समाज था, किन्तु विशाल समूह होने से कई उससे वंचित रह गये । हाँ, मालोजी उस लाभ से वंचित न रह सके । मालोजी के मुख पर प्रसन्नता की रेखाएँ खिंच आई थीं ।

अब लुकजी यादवराव ने स्वर दिया—

"मित्र, होने दो रंग !"

लुकजी का स्वर सर्वत्र-बिखर गया । सर्वत्र उमंगें नाचने लगीं बाल-मण्डली में भी उत्सुकता जागी । गोपाल खड़ा हो गया और सविनय बोला—

"श्रीमन्त ! यह बाल-मण्डली आई है ।"

गोपाल ने मंडली की ओर संकेत किया ।

लुकजी का ध्यान उस बाल-मण्डली की ओर गया । उन्होंने उस ओर देखा तो उन्हें विस्मय ने घेर लिया । आँखें उठीं तो देखा राधा और कृष्ण बने वे आगे आ गये थे ।

"हाँ, प्रभो ! राधा-कृष्ण का नृत्य होगा ! राधा नाचेगी कृष्ण बंसरी बजायेंगे । गोपियाँ—सखियाँ नाचेंगी गोप-सखा नाचेंगे !"

यह सब गोपाल एक ही साँस में कह गया । सहसा हँसी फूट पड़ी । लुकजी ने मालोजी की ओर प्रश्नभाव से देखा ! वे मुस्करा रहे थे । मालोजी ने आँखों ही आँखों में स्वीकृति दे दी । सबकी आँखें उस ओर लग गईं । 'राधा-कृष्ण' का नृत्य ! गोप-गोपिकाओं का नृत्य !

अनेक बालकों ने घुँघरू बाँध लिये । कुछ ने बंसरियाँ ले लीं । बंसरियों ने राग छेड़ा ! मिलन का राग ! अद्‌भुत मधुरिमा थी उस राग में ! राग अपनी अन्तिम लय में मुखरित हुआ । प्रासाद के समीप गोशाला थी । लुकजी अनेक गौएँ पालते थे । गोरक्षक की गौवें रम्भाने लगीं । उनके वत्स माताओं की पुकार सुनकर रम्भाने लगे । दर्शक मंत्र-मुग्ध हो गये । धीरे-धीरे कामदेव की स्तुति के राग उन बाँसुरियों से मुखरित होने लगे । श्रोताओं में नवीन चेतना, उमंग, तरंग और उत्तेजना जाग्रत हो रही थी । ताल, लय और नृत्यों की मादकता सब पर छाये चली जा रही थी । गवाक्षों में दर्शक बना बैठा महिला-मण्डल भाव-विभोर हो उठा था । उनके मन बाँसों उछल-उछल पड़ रहे थे । वसन्त का कीर्तिमान् उनके मुखारबिन्दों पर अंकित होता जा रहा था । मधुर तान ! मीठी तानें—उठ रही थीं और खो रही थीं । वे दर्शिकाएँ उन तानों में तन्मय हो गई थीं । कामदेव की मुखरित गीत-ध्वनियाँ सहसा रुक गईं । घुँघरुओं की झंकार रुक गईं । राधा-कृष्ण अपनी मण्डली में, विनत होकर चले गये । उन सबने अपना स्थान ले लिया ।

"अब रंग होगा ।"

कहकर, रंग खेलने का प्रारम्भ लुकजी प्रमुख ने किया । उन्होंने सर्वप्रथम मालोजी के मस्तक पर गुलाल छिड़का, प्रतिस्वरूप मालोजी ने भी वैसा ही व्यवहार किया, दोनों प्रीतिपूर्वक गले मिले, चौड़ी छातियाँ

गद्गद् हो गईं—फूल उठीं वे। मालोजी के आचरण में विनम्रता का भाव स्पष्ट झलक आया। दोनों छाती मिले। तदनन्तर अन्य सभी उपस्थितजन एक दूसरे पर रंग गेरने लगे। रंग के अम्बर स्थल-स्थल पर उठने लगे। रजत-पात्रों में गुलाल के जो शिवलिंग बने हुए थे खण्डित होने लगे। रंग उन पात्रों से भर-भर कर आता और अतिथियों—रंग खेलनेवालों के वस्त्रों को, उनके मुख-मण्डलों को, उनके ललाट और सिरों को रंग रहा था। अपूर्व रंग जम रहा था। पाषाण के स्फटिक स्तम्भ रँग गये। उन स्तम्भों की बारीक जालियाँ रँग गईं, जैसे शिल्पियों की कला को अभिनन्दन मिल गया—उन्हें मानो स्मरण कर लिया इस रंग में। बयार ने समस्त अम्बर रँग दिया।

उत्सुक-नयन छोटे-छोटे बालक-बालिकाएँ अपने-अपने अविभावकों की धमाचौकड़ी को बड़ी तन्मयता से निहार रहे थे। जन-सामान्य और विशिष्ठ सामाजिक, जीवन और आचरण का अद्भुत समिश्रण इस धमाचौकड़ी में तन्मय हो रहा था। अमीर-गरीब का साम्य-दर्शन यहाँ दर्शनीय बन गया था। आतिथेय बाल-गोपाल आगत बालमण्डली में सम्मिलित थे ही। लुकजी प्रमुख की पुत्री भी इस रंग की धींगामस्ती में रस ले रही थी। मन उसका मयूरों-सा नर्तन कर रहा था। क्या वह भी रंग खेलेगी? किन्तु उसके वस्त्र तो प्राकृतिक रूप से रंग-विरंगे थे। क्या फिर भी उसे रंग में भीगना अच्छा लगेगा?

हाँ, उसे भी रंग में रँग जाना प्रिय लग रहा है। पाँच वसन्त ही तो बिता पाई है वह, पिछले रंग की धुँधली-सी स्मृति उसके स्मृति पटल पर अंकित हो आई। तब वह रंग नहीं खेली थी, किन्तु इस बार खेलना चाह रही थी। उसे रंगबिरंगी आकृतियाँ मनभावन, सुहावनी लग रहीं थीं। उसकी उमंग बढ़ी। एक रजतपात्र, गुलाल से भरा, शिवलिंग की आकृति में अभी तक किसी की प्रतीक्षा कर रहा था

सम्भवतः इस बालिका को ही तो ! बालिका उस ओर बढ़ी। उसने अपने नन्हें हाथ उस पात्र की ओर बढ़ाये कि अञ्जलि बँध गई— देव मंदिर में ऐसी ही आकृतियाँ उसने माँ के साथ देखी थीं, किन्तु वे पाषाण की थीं। उन पर जल चढ़ाया जाता था, बेलपत्र और धतूरा चढ़ाया जाता था और कभी उसने भी तो पुष्प अर्पित किये थे। किन्तु यह गुलाल-पिण्ड ? एक प्रश्न बनकर खड़ा हो गया उसके सामने ! संकुचित भावना ने उस पिण्ड को खण्डित करना अभीष्ट नहीं समझा···किन्तु फिर ध्यान आया यह भी तो अन्य पात्रों में रखे गुलाल-पिण्डों की तरह ही तो है जो बिखर चुके हैं। वह मात्र गुलाल है और उसने अञ्जलि भर-भर अपने साथी-सहयोगियों पर गुलाल उलीचना आरम्भ कर दिया। संकोच-शकाएँ मिटती गईं, रंग की तरह बिखर गईं। बाल-मण्डली दौड़ आईं। वे भी रंग फैंकने लगे, एक दूसरे पर। उनके रंग-बिरंगे वस्त्र लाल हो गये। शाहजी ने रंग फैंका, जीजा का मुख रँग गया। कुछ रंग उसके पैरों पर जम गया। जीजाबाई आह्लादित हो उठी। उसे स्मरण हो आया—माँ ने कई बार उसके पैरों पर महावर अंकित करवाया है। माँ जब-जब स्वयं महावर अंकित कराती हैं तब वह उससे भी आग्रह करती हैं। किन्तु आज ? आज उसके पैर स्वयं रँग गये आज पैर रँगने के लिये किसी का आग्रह नहीं था।

तब क्या यह सौभाग्य का सूचक है ? निःसंदेह सौभाग्य का सूचक–वरदाई चिह्न !

आत्म-विभोर जीजाबाई ने फिर रंग फैंकना आरम्भ किया। वह शाहजी पर गुलाल की ऐसी मार मारती कि गुलाल सीधा मुख पर बैठता। आँखें मिर्चामिच जातीं। शाहजी बालकों में तेज था, उसका ललाट विशाल और बाहु लम्बे थे। उसने सहज ही जीजा के हाथ पकड़ लिये। बाल-हृदयों में हिलोरें उठने लगीं। जीजा ने झटककर हाथ छुड़ा लिया। शाहजी ने रंग भर लिया और जीजा के कोमल

कपोलों को रंग दिया । बालक विजयी होता गया, बालिका ढीली पड़ती गई । शाहजी ने फिर रंग भरा और अबकी बार उसने उस बालिका पर डाला तो उसके भाल पर पड़ा । कपाल पर एक लम्बी रेखा—लाल रेखा खिंच गई ।

ऐसी ही लाल रेखाएँ बाल-मण्डली ने अपनी माताओं को लगाते देखा था, विवाहिता बहनों को देखा था । किन्तु छोटी बालिकाओं की माँग में रंग किसी ने भी नहीं देखा था । उन्हें विस्मय हुआ ! कुछ बालक चिल्ला पड़े—

"जीजाबाई की माँग में रंग !"

वे हँसने लगे, जीजा लजा गई ।

यादव-प्रमुख ने यह सब देखा और वे उस ओर बढ़े । समीप से देखा—जीजा और शाहजी समीप, खड़े रंग में रँगे हुए हैं । पितृ-हृदय गद्‌गद् हो उठा—

"कितनी सुन्दर जोड़ी है ? कितना अच्छा हो…… !"

किन्तु वाक्य अधूरा रह गया । आधे उद्‌गार मन में ही रह गये । अहमदनगर का सर्वसम्पन्न प्रमुख, अहमदनगर का भाग्यविधाता, मराठा वीर-प्रमुख सचेतन हो गया था । उसका गौरव जाग उठा था, उसके सम्मुख उसका सम्मान, वैभव मुखरित हो उठा था—धीमे स्वर में मुँह से निकला—ऊँह—और वह आगे बढ़ गया । मराठा-प्रमुख के अधूरे उद्‌गार कुछ सामन्तों ने सुन लिये । मालोजी ने भी सुन लिये थे किन्तु लुकजी की मुख-मुद्रा किसी ने देख नहीं पाई थी । लुकजी के निश्छल, निर्मल शब्द ही उनके कानों में पड़े थे ।

मालोजी के मन में अकल्पित सुन्दर भविष्य की कल्पना जाग उठी । उनके कुछ साथियों को मधुर कल्पना छू गई ।

"लुकजी प्रमुख अपनी कन्या का वाग्दान मालोजी भोंसले के पुत्र

शाहजी के साथ !" अनेक सामन्त और प्रतिष्ठितजनों के लिये विस्मय-सूचक स्थिति बन गई। लुकजी कुछ दूर निकल कर अभ्यागतों के रंग का प्रत्युत्तर दे रहे थे। मालोजी के साथी उनके साथ खड़े थे। उनमें से एक ने कहा—

"मराठा सरदार, सौभाग्य ! बधाई !"

मालोजी विस्मय और चिन्तन-मुद्रा में कभी लुकजी को तो कभी जीजाबाई को देखते थे। उनका मुखारविन्द खिल उठा। एक ज्योति उनकी मुखाकृति को उत्फुल्ल कर गई ! कहाँ लुकजी प्रधान–अहमदनगर की राजनीति का भाग्यविधाता और कहाँ वह स्वयं–एक सामान्य-जन के पुत्र के साथ लुकजी का आकर्षण ! समृद्धि और निर्धनता का संयोग विचित्र लग रहा था। अकेले मालोजीराजे इस कथ्य से प्रभावित हुए हों सो नहीं अनेक सामन्त श्रेष्ठिजन और वे सब जिसने यह सुना कि 'कितनी सुन्दर जोड़ी है !' प्रभावित हुए थे। मालोजी पर इतनी प्रीति का कारण ? इस महान् उदारता का हेतु ? प्रयोजन ? अथवा रहस्य ? उनमें मनहीमनं अनेक प्रश्न बन रहे थे, मिट रहे थे।

अवश्य ही यह रहस्य नहीं था। न कोई प्रयोजन-सिद्धि थी, न कोई उदारता प्रगट की जा रही थी। बात सहज थी। राधा-कृष्ण के नृत्य में, बाँसुरी की तानों में वे स्वयं खो गये थे और राधा-कृष्ण के समान ही जब जीजाबाई और शाहजी को परस्पर रंग खेलते देखा था तो उनका पितृ-हृदय आत्म-विभोर हो गया था। बस, बात इतनी थी। लुकजी यादवराव, अहमदनगर के सेना-नायक ने कभी स्वप्न में भी नहीं सोचा था कि ऐसे उद्गार कभी उनके मुख से निकलेंगे और वे सामाजिकों में छा जायेंगे। विधि की विडम्बना ही थी ! भाग्य का लेख ही था जो ऐसी भावना उठी उनके अन्तरतम में।

लुकजी लौटे तो मालोजी ने उनका हाथ कृतज्ञतावश पकड़ लिया। बोले—

"नायक-प्रधान उपकृत हूँ। जीजाबाई को अपनी पुत्र-वधू बनाकर मैं स्वयं को धन्य समझूँगा।"

"मालोजीराजे दिवा-स्वप्न देख रहे हो ?"

लुकजी के कथन में दर्प था। लुकजी ने हाथ छुड़ा लिया था। मालोजी की खिसियानी-सी आकृति हो आई थी।

लुकजी वक्रदृष्टि से मालोजी की ओर देख रहे थे। उनका वैभव-दर्प जैसे ऊपर उठ आया था।

"यादव-प्रमुख ने अभी-अभी स्वयं प्रस्ताव किया था।" मालोजी का आत्म-गौरव उभर आया। उन्होंने कहा—"देवगिरी के यादव-वंश ने सदैव मराठों को सम्मान दिया है।"

"बौना आकाश नहीं छू सकता ! मालोजी आकाश-कुसुम तोड़ना तो दूर उसे छू भी नहीं सकते।"

मालोजी सन्न रह गये। सम्पन्नता, श्री के अभाव ने उन्हें हतोत्साहित करने की चेष्टा की। मालोजी ने एक बार शाहजी को देखा, जीजाबाई को देखा और अपने साथियों को देखा, फिर अपनी तलवार का स्मरण किया, पूर्वजों की मही की आन और प्रतिष्ठा स्मरण हो आई। मुख पर तेज उभर आया। उनका दर्प बोल उठा—

"यादव-प्रधान वाग्दान से पीछे हट रहे हैं। यदि यादवराव को अपने वैभव, उच्च पद और सम्पत्ति पर गर्व है तो हमें भी अपनी भवानी की सौगन्ध है, इस अपमान का प्रतिशोध……"

प्रतिशोध शब्द आकर मालोजी की जिह्वा पर रुक गया। किन्तु सतेज वे आगे बढ़े और जीजाबाई तथा शाहजी के हाथ ऊँचे उठाकर उच्च स्वर में बोले—

"मित्रो ! लुकजी यादवराव ने अपने मुख से इसे सुन्दर जोड़ी कहा है ! वास्तव में जोड़ी सुन्दर है और यह सदा-सदा के लिये जोड़ी रहेगी !"

रंग-सभा-मण्डप में सन्नाटा छा गया था। महिलावर्ग में फुसफुसा-

हट होने लगी। निजामशाह की बेगमें लुकजी की पत्नी का मुंह ताकने लगीं! रंग में भंग पड़ती दीखी। रंग की धमाचौकड़ी रक्तिमरूप धारण करेगी क्या? रंग-स्थली क्या संघर्ष स्थली बनेगी?

लुकजी ने कहा—"मालोजीराजे यह अनहोनी है।"

"भाग्य का लेख यही है।" मालोजी गरजे—"मराठों की भवानी भाग्य का लेख लिखती है, अनहोनी को होनी बना लेती है।"

अब तो लुकजी से रहा नहीं गया। उन्हें लगा जैसे कि वे अपमान के घूँट पी रहे हैं और अब असह्य हो गया है एक शब्द भी सुनना। लुकजी परिवार के युवाजन भी सामने आ गये। अब उनके हाथों में तलवारें थीं। अनेक कृपाणें उनके सेवक, उनका संकेत पाकर ले आए थे। यह बात मालोजी और उनके साथियों से छिपी न रह सकी।

मालोजीराजे और उनके साथी निरस्त्र थे। किन्तु भय उनसे कोसों दूर था मालोजी ने लुकजी से कहा—

"यादव कुल को कलंकित मत करो, लुकजी, हमारे पूर्वज भी क्षत्रिय हैं और क्षत्रिय अपमान की मृत्यु नहीं जीता।" उन तलवारों की ओर संकेत कर उन्होंने बात आगे बढ़ाई—"ये तलवारें आज हमें काट सकती हैं किन्तु बच यादव भी नहीं सकेंगे।"

सुनकर लुकजी ने अपने पीछे की ओर देखा, उनके युवक परिजन तलवारें लिये हुए थे। इस स्थिति से वे सम्भवतः अब तक अपरिचित थे। लुकजी की देह कौंध गई। यह तो उन्होंने कल्पना में भी नहीं सोचा था कि बात इतनी बढ़ जायगी। एक भावना अथवा एक सामान्य परिहास इतनी उग्रता का रूप धारण कर लेगा। लुकजी चाहते तो मराठा-सामन्तों का चिह्न मिटवा देते किन्तु वे यह जानते थे कि मालोजी पर निजामशाह की दृष्टि उदार है। वे उनको अपनी परिषद् में भी समान देते हैं। लुकजी के ध्यान में यह तुरन्त धारणा बन गई कि यदि इस समय कुछ हो गया तो निजामशाह सुलतान चूकेगा नहीं, मालोजी का पक्ष लेकर अवश्य उन्हें दण्डित करेगा और इस संकट को

मोल लेने के लिये लुकजी किसी भी मूल्य पर प्रस्तुत नहीं थे। उन्होंने हाथ पीछे कर, संकेत से उन खड्गधारियों को रोक दिया। अभी तक तलवारें-खड्ग कोषों में ही स्थिर थीं। मालोजीराजे का राजपूती रक्त तप रहा था। उन्होंने फिर कहा —

"लुकजी यादवराव, क्षत्रिय अपमान का घूँट नहीं पीता ! लुकजी का परिवार यादव राजवंशी है तो हम भोंसलों के पूर्वज भी राज-घरानों से सम्बन्धित हैं। कुल-मर्यादा की भित्तियाँ गिर कर रहेंगीं। ऊँच-नीच और धनी-निर्धन की भूमि रसातल में समाकर रहेगी।"

लुकजी गरज उठे—"भोंसलों को अपनी शक्ति पर गर्व है यह हम जानते हैं किन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि वे हमारे परिवार से खेल खेलें। हमारे वैभव का उपहास करें। मालोजी, आओ ! शक्ति का निर्णय हो जाय।"

"अवश्य !" मालोजी ने सदर्प कहा—"द्वन्द्व युद्ध ही सही, स्वीकार है लुकजी यादराव।"

लुकजी यादवराव ने अपने साथी से एक तलवार लेली और दूसरी तलवार मालोजी की ओर फेंक दी। मालोजी ने उसे झेल लिया !

लुकजी ने सावेश कहा—

'साथियो ! यह द्वन्द्व है, सबको शपथ है जो कोई हमारे बीच आया। दोनों की शक्ति का निर्णायक वही होगा जो जीवित रहेगा।"

और तलवारें खटाक्-खटाक् चलने लगीं। बाल-मण्डली भय-ग्रस्त हो उठी। जीजाबाई और शाहजी समीप खड़े एक दूसरे की ओर देख रहे थे। आगन्तुक पीछे हटते जा रहे थे। प्रमदाकक्ष में सन्नाटा छा गया था। लुकजी और मालोजी की पत्नियाँ चिन्तातुर हो उठीं। सुल्तान की बेगमें यह दृश्य देख, घबरा उठीं। बेगम प्रमुख से रहा नहीं गया। इस द्वन्द्व के लिये कोई सहमति नहीं दे रहा था। प्रमुख बेगम ने आदेश के स्वर में पुकारा—

"यादवराव और मालोजीराजे !"

बेगम की पुकार जैसे तलवारें सुन गईं वे आकाश में भिड़ी की भिड़ी रह गईं। दोनों नायकों की दृष्टि प्रमदा-कक्ष की ओर उठ चुकी थी।

बड़ी बेगम बोलने में अधिक अभ्यस्त नहीं थी। उसकी आँखों में चमक बढ़ आई थी। फिर भी उसने कहना प्रारम्भ किया—

"इस जमीन पर बहादुरों की पूजा की जाती है, दो दोस्त आपस में टकरायेंगे तो हमारा ही नुकसान है। हमारी सल्तनत कमजोर पड़ जायेगी। हम जानते हैं, दोनों ही वीर हमारी सल्तनत के दो बाजू हैं"

लुकजी और मालोजी दोनों की आँखें जैसे कुछ ढूँढ़ने लगीं।

"नायक लुकजी यादवराव एक दिन भोंसले मालोजीराजे को सुल्तान की चाकरी में लाए थे। अहमदनगर की निजामशाही को दोनों पर फक्र है। सारी रियाया उनकी वीरता की कायल है, यदि दोनों में से एक को भी नुकसान पहुँचा तो यह नुकसान हमारी सल्तनत को भोगना पड़ेगा। दुश्मन हमेशा निजामशाही का दरवाजा खटखटाता रहता है। वह इसका फायदा उठायेगा, हमारी सल्तनत के महल का दरवाजा कमजोर हो जायेगा…" प्रधान बेगम ने फिर कहा—

अब तलवारें धरती पर टिक गई थीं।

"मानते हैं कि बात यादवराव की तरफ से उठी थी। अगर मालोजीराजे ने यादवराव के मुँह से निकली बात को तूल दिया है, इसका तो निबटारा धीरज और अमन से होगा! दोनो ही सामन्त हमारे हैं। हम दोनों में से एक को भी खोना पसन्द नहीं करेंगे।" बेगम प्रधान ने फिर कहा।

सर्वत्र सन्नाटा छा गया। मालोजीराजे तलवार फेंक बाहर निकल गये। उनके पीछे अन्य साथी। शाहजी को जीजाबाई एक विलक्षण दृष्टि से देख रही थी। शाहजी उत्सुक दृष्टि से देखता चला गया।

प्रांगण का आनन्द और हर्ष विषाद में बदल गया। सबकी आकृतियाँ जैसे मुरझा गई हों किन्तु बेगम प्रधान की सर्वत्र प्रशंसा होने लगी। गुलाल का रंग उन आकृतियों पर से झर रहा था।

●

दो

मालोजी खिन्न होकर अहमदनगर से अपने ग्राम एलोरा ग्रा गये। उन्होंने अपना कृषिकर्म आरम्भ कर दिया। रात्रि चन्द्रमा की शीतल किरणों से जगमग-जगमग कर रही थी। उनकी शैया खेत से कुछ हटकर एक पीपल के वृक्ष के समीप थी। धवल वस्त्र उस पर बिछे थे। अपने अपमान का प्रतिशोध उन्हें मिला नहीं था। उनके मन में पीड़ा समायी हुई थी। वे प्रतिशोध लेना चाहते थे। मन में एक कठोर ग्रन्थि बन गई थी। लुकजी यादवराव का दर्प चूर्ण करने का मन ही मन संकल्प उभर रहा था। इस ऊहापोह में उनकी ग्राँख लग गई थी। ग्राँख लगने से पूर्व सोचते रहे थे कि इस धरती पर परिवार का भविष्य किस प्रकार उजागर होगा? सोच रहे थे, शाहजी एक महान् व्यक्ति कैसे बनेगा? वे पुनः शैया पर बैठ गये। उन्हें पत्तों की सरसराहट सुनाई पड़ी, उस ग्रोर देखा, जिधर से वह सरसराहट की ध्वनि उभर रही थी तो उन्होंने एक सर्प को बाँबी में से निकलते हुए पाया। वे तत्काल उठे और डण्डे से उस मणिधर पर ग्राक्रमण कर दिया। मणिधर ने एक फुँकार मारी, वे पीछे हट गये और दूसरा आघात किया, क्योंकि प्रथम आघात सर्प के ठीक मस्तक पर नहीं बैठा था, भय था यदि सर्प बच गया तो प्रतिशोध लेगा। दूसरा आघात ठीक फन पर पड़ा।

सर्प मृत-प्राय: हो गया था, एक आघात और बस । नागदेवता के प्राण पखेरू उड़ गये । अब जब सर्प ने प्राण त्याग दिये तो उन्हें ध्यान आया कि हो न हो, जहाँ से सर्प निकला था वहाँ धन होगा । क्योंकि ऐसी किम्बदन्त्तियाँ सदैव प्रचलित रही हैं कि सर्प धन की रक्षा करते हैं । कंजूस मनुष्य अपने जीवन काल में अर्जित अथवा उपलब्ध धन का सदुपयोग नहीं करते तो वे सर्पयोनि में जाते हैं और अपने गाड़े हुए धन की रक्षा करते हैं । धन का मोह उन्हें जीवन-मुक्ति का मार्ग नहीं लेने देता । मालोजी ने कृषिकर्म में प्रयोग में किये जाने वाले अपने फावड़े को लिया और भूमि खोदनी आरम्भ कर दी । थोड़ी देर के परिश्रम से ही हाथों में एक ताम्र-कलश आ गया । स्वर्ण-मुद्राएँ देखकर उनकी आँखें चौंधियाँ गईं । कामना बढ़ी, फिर खोदा तो फिर वैसा ही ताम्र-कलश और उसमें स्वर्ण मुद्रायें ! इस प्रकार सात स्वर्ण-मुद्राओं से भरे ताम्रघट थोड़ी देर में मिल गये । प्रारब्ध से विशाल सम्पत्ति मिल गई उन्हें । अब क्या करें ? मालोजी ने उन स्वर्ण भरे पात्रों को खेत की मिट्टी से ढक दिया—

"और अब ?"

"फिर महाजन, श्रेष्ठि का आश्रय ।"

"ठीक है, चमारमुण्डा का श्रेष्ठि महाजन, पुण्डे !"

मालोजी ने एक दृष्टि उस मिट्टी से दबे ढेर पर डाली और फिर अपनी आँखों को विश्वास दिलाने के लिये दूर, उससे दूर और दूर किन्तु कहीं कोई नहीं था । वे नितान्त अकेले थे । उन्होंने अपनी खाट उस ढेर के पास बिछादी । वे वहाँ से हटे नहीं । जमे रहे ।

आकाश में सूर्य उठ रहा था । खेत पर स्वर्ण की वर्षा हो रही थी मालोजी को लगा उनका समस्त खेत स्वर्ण से भरा हुआ है । स्वर्ण की चकाचौंध ! स्वर्ण ! स्वर्ण ! सर्वत्र स्वर्ण उन्हें बिखरा दिखाई देने लगा । प्रातःकाल जब वे देर तक घर नहीं पहुँचे तो उनके भाई बिठोजी

आए, पत्नी आई, उन्होंने सारी घटना बताई, वह स्वर्ण बताया जो एक रात्रि में पाया था, उस मरे हुए सर्प को बताया जिसने धनागार का रहस्य उदघाटत किया था।

मालोजी ने उस धन को रात्रि में ही उठाना उचित समझा। दिन भर तीनों प्राणी वहीं जमे रहे।

मालोजी ने उस रात्रि आत्म-बोध द्वारा सूचित चमारमुण्डा के पुण्डे नामक श्रेष्ठि के यहाँ अपनी सम्पत्ति रख दी। कुछ ही दिनों में उस महाजन की सहायता से उन्होंने कुछ घोड़े खरीदे, उनके लिये जीनें खरीदीं, हथियार—तलवार और भाले खरीदे, तम्बू खरीदे और एक सहस्त्र सैनिकों का एक दल तैयार कर लिया। अब इन तलवारों की शक्ति को कोई भी धनदाता सुल्तान अपनी सेवार्थ ले सकता था।

मालोजी का सैन्यदल धीरे-धीरे कई सहस्र हो गया। उनका आतंक सुदूर मुस्लिम शासकों में छाने लगा। उनके विशालकाय भाई बिठोजी भी मालोजी के साथ रहते। दोनों भाई अपनी वीरता की धाक सर्वत्र जमाने लगे।

जब मालोजी अपने घर ऐलोरा चले आये तो निजामशाही सुल्तान को दुःख हुआ। वह नहीं चाहता था कि मालोजी अहमदनगर से दूर रहें। जब उसने सुना कि मालोजी ने एक सैन्य-दल संगठित कर लिया है तो वह अधिक चिन्तित हुआ। उसके मन में घुन लग गया। जैसे भी हो मालोजीराजे को सम्मानपूर्वक अहमदनगर में बुलाया जाय और राज्य की सेवा में एक उच्च पद दे दिया जाय ! किन्तु लुकजी यादवराव का प्रभाव ? उसने सोचा दोनों में मेल करा दूँगा। और मालोजीराजे तथा बिठोजीराजे ने अहमदनगर निज़ामशाही की सेवायें स्वीकृत करलीं। अब वे अपने अस्तित्व के लिये कटिबद्ध हो गये। लुकजी साधन-सम्पन्नता और धन-वैभव में अब भी मालोजी से बढ़ चढ़कर थे।

सुल्तान नहीं चाहता था कि लुकजी और मालोजी में मनोमालिन्य बना रहे। उसकी धारणा थी, मनोमालिन्य ही विद्वेष का रूप धारण कर लेता है और विद्वेष अपनी जड़ें गहरी और विस्तृत करता जाता है। और जब विद्वेष अपना उग्ररूप धारण कर लेता है तो विनाश का कारण बन जाता है। दूरदर्शिता यही है कि विद्वेष को फलने-फूलने नहीं दिया जाय। वह समझता था कि विद्वेष चाहे दो व्यक्तियों का हो, चाहे दो परिवारों का हो। समाज अथवा देश का हो, उसे मिटाना ही हितकर है। उसने एक दिन अपने परामर्शगृह में दोनों को आमंत्रित किया। दोनों सामन्त सुल्तान के मंत्रणा-कक्ष में पहुँचे। सुल्तान दोनों की प्रतीक्षा में था। उसने दोनों सामन्तों की अभ्यर्थना की। दोनों ही अपने अपने निश्चित आसनों पर बैठ गये।

सुल्तान ने पहल की—

"लुकजी यादवराव, और मालोजी राजे ! हम नहीं चाहते कि आप लोगों में मनोमालिन्य बना रहे। मन की गाँठ खोल लेनी चाहिये।"

"मालोजी अवसर की ताक में थे ही झट से बोल पड़े—

"सुल्तान का आदेश कभी ठुकराऊँगा नहीं।"

मालोजी ने सुल्तान की उदारता को वरण करना अभीष्ट समझा !

"यह तो हमें भरोसा है मालोजीराजे !"

लुकजी अब भी ऊहापोह में थे। वे सोच रहे थे, सुल्तान न जाने क्या आदेश दे दे ! अब वे सुल्तान की ओर देख रहे थे। सुल्तान ने उनसे कहा—

"लुकजी यादवराव, हमें तुम्हारी राज्य-भक्ति में तनिक भी शंका नहीं है। हम तुम्हें अपना दाहिना हाथ समझते हैं…।"

सुल्तान अभी कुछ और कहना चाहते थे किन्तु लुकजी ने सहज स्वभाव कहा—

"यह तो सुल्तान की उदारता है।"

"हम चाहते हैं लुकजी और मालोजी एकजुट होकर अहमदनगर की तरक्की करें।"

"सुल्तान आलीजाह को भरोसा दिलाता हूँ, जो आदेश देंगे स्वीकार करने में आगा पीछा नहीं करूँगा।" लुकजी ने कहा।

"हम चाहते हैं शाहजी और जीजाबाई का विवाह हो जाय।"

सुनकर लुकजी दंग रह गये। मालोजी ने अपनी दृष्टि नीची करली लुकजी को यह आशा नहीं थी कि सुल्तान उन्हें ऐसा आदेश भी दे सकते हैं, जो उनके लिये नितान्त व्यक्तिगत था। उनके समीप की धरती जैसे काँप गई। उन्होंने अपनी आँखें तरेरी और मालोजी की ओर टिका दीं। मालोजी एक दृष्टि से यह देख गये।

"लुकजी यादवराव, हमने मालोजीराजे को पंच-हजारी पद और जागीर बक्शी का इरादा कर लिया है।"

"इसमें सेवक को क्या आपत्ति हो सकती है आलमपनाह। किन्तु......" आगे वे बोल नहीं पाये। सुल्तान ने ही उसे पूरा करने का दायित्व लिया।

"किन्तु ! लुकजी यादवराव क्षत्रिय हैं और एक राजपूत अपने बचन से मुकरता नहीं।"

"वचन !"

"हाँ, हमारे आदेश-पालन के लिये बचनबद्ध हैं सामन्त।"

सुल्तान की वाक्चातुर्य में लुकजी फँस गये। सुल्तान ने कहा—"यादव शिरोमणि, हम तुम्हें निजामशाही का सुदृढ़ स्तम्भ मान चुके हैं, साथ ही कहेंगे, मालोजी की शक्ति की भी हमें आवश्यकता रहेगी। निजामशाही पर आए दिन संकट आते रहते हैं, दोनों योद्धा मिलकर ही उन संकटों को अहमदनगर राज्य से दूर रख सकेंगे। मालोजीराजे को हम पूना और सूपा की पाटिलदारी भी मंजूर करते हैं। अब वे किसी तरह कमजोर नहीं रहेंगे।"

मालोजी ने सामान्य उठकर सुल्तान के प्रति आभार प्रदर्शन किया लुकजी कभी सुल्तान को तो कभी मालोजी को देखने लगे। विचार-तन्द्रा में वे डूबने इतराने लगे।

थोड़ी देर बाद बोले—

"लुकजी यादवराव अपनी मंजूरी दे रहे हैं, मालोजीराजे !"

"उपकृत हुआ सुल्तान।"

मालोजी ने पुनः आभार प्रदर्शन किया। मालोजी उठकर खड़े हो गये और लुकजी से छाती मिलने की प्रतीक्षा करने लगे। सुल्तान ने पुनः प्रेरित किया—

"लुकजी यादवराव !"

अब लुकजी को मनमार कर मालोजी से भेंट करनी पड़ी !"

सुल्तान ने लुकजी को भी कुछ ग्राम जागीर में दे दिये।

...और कुछ समय पश्चात् बारात शिन्दखेड़, लुकजी के यहाँ पहुँची। बारात में हाथी-घोड़े, रथ-बहेलियाँ सभी थीं। बारात लुकजी की प्रतिष्ठा के अनुरूप सजाई गई थी। हाथियों पर चाँदी-सोने के बने हौदे थे। उन पर स्वर्ण-छत्र झिलमिलाते थे। अश्वों को स्वर्णाभरण धारण करवाये गये थे। उनकी जीनें स्वर्ण-रजत मिश्रित थीं। सूर्य की किरणों में वे झिलमिलाती थीं। रथ और बहेलियों में जुते बैलों को अद्भुत ढंग से सजाया गया था। उनके सींग स्वर्ण के कोषों से मढ़े गये थे। सीगों पर रुपहली सिंगोटियाँ चढ़ाई गई थीं। उनके सिरों पर जर-दोजी के मुकुट पहनाये गये थे। उनकी पीठों पर जरदोजी की ही चमचमाती झूलें डाली गई थीं। गले में घुँघरू और पैरों में चाँदी की झाँझनें बाँधी गई थीं, जब उन्हें चलने को कह दिया गया तो वे मस्ती भरी चाल से सरपट दौड़ने लगे। अश्वारोही सैनिकों की संख्या कम नहीं थी। अनेक सामन्त और मंत्रिगण, प्रमुख अतिथि इस बारात में सम्मलित हुए।

जब सन्ध्या समय शाहजी, अश्व पर चढ़कर अपनी बारात का स्वागत कराने लुकजी यादवराव के प्रासाद पहुँचे तो अनेक सन्नारियों ने, युवतियों ने, शिन्दखेड़ के तथा दूरागत अतिथियों ने उन सबका स्वागत किया। सुल्तान निजामशाह को अपने यहाँ देख लुकजी गद्-गद हो गये। उन्होंने पूरा सम्मान किया और पूरी आवभगत की।

…और गोधूलिवेला में शाहजी और जीजाबाई को एक ग्रन्थि में बाँध दिया गया…एक रसमय ग्रन्थि—विवाहग्रन्थि। जीजाबाई दुल्हिन को लेकर बारात लौट आई। अहमदनगर पहुँच कर मालोजी ने खूब दान-दक्षिणा और भेंट दी। मालोजीराजे ने अपनी प्रतिष्ठा को चार चाँद लगाने के लिये कुछ कसर नहीं छोड़ी। अनेक सामाजिक कृत्यों को सँभारा-सँजोया। बेरूल ऐलोरा में घृष्णेश्वर का मन्दिर जीर्ण-शीर्ण अवस्था में पड़ा हुआ था, उसका जीर्णोद्धार करवाया। सतारा के निकटवर्ती शम्भू महादेव के दर्शनार्थ शिवभक्त एक बड़ी संख्या में जाया करते थे, उन्हें जल का अभाव सताता रहता था। मालोजी ने वहाँ एक विशाल सर खुदवाया और जलाभाव दूर किया। यात्रिगण अधिक संख्या में वहाँ आने लगे और मालोजी भोंसले का कीर्तिगान करने लगे।

तीन

सुल्तान निजामशाह के आग्रह ने लुकजी यादवराव की पुत्री जीजाबाई एवं मालोजीराजे के पुत्र शाहजी को एक सरस ग्रन्थि में अवश्य बाँध दिया, किन्तु लुकजी का मन सुल्तान के प्रति निष्ठासूत्रों में बँधा नहीं रह सका। दम्पत्ति अवश्य रसमय संसार में हिलोरें लेने लगा किन्तु उस रस में लुकजी को विरसता दीखने लगी। वे तो अब भी मालोजी को अपने से हीनवर्ग का मानते थे। यद्यपि मालोजी को समस्त निजामशाही गौरव और प्रतिष्ठा दे चुकी थी। लुकजी में हीन-भावना ही थी जो उन्हें कचोटने लगी। उनका हृदय सरसता से विमुख होता चला गया। मालोजी के प्रति ही नहीं, सुल्तान के प्रति तक उनकी निष्ठा पूर्णिमा के बाद के चन्द्रमा के समान निरन्तर विघटित होने लगी। सुल्तान का हृदय भी अनेकानेक ऊहापोहों में फँसकर विचलित रहने लगा। वे अकल्पित सम्भावनों में डूबने-उतराने लगे। जब वे एकान्त में बैठते तो उनके मन में व्यथा भर जाती।

धीरे-धीरे लुकजी परिषद् में अपनी अनुपस्थिति का भान कराने लगे, यद्यपि मालोजी ने अपनी नीतिमत्ता, कार्यकुशलता से सुल्तान को लुकजी की अनुपस्थिति का अभाव खटकने नहीं दिया किन्तु सुल्तान लुकजी को विस्मृत नहीं कर पा रहा था।

मुस्लिम वर्ग का नेतृत्व अब मलिक अम्बर के अधीन आ चुका था, मालोजी को मलिक का पूर्ण समर्थन मिलने लगा। मालोजी राजे ने मलिक अम्बर के विश्वस्त मित्रों में स्थान बना लिया था। दोनों ने निजामशाह को यथाशक्य सन्तोष दिलाया।

...और एक प्रभात सुल्तान ने मालोजीराजे के एक गुप्तचर से सुना कि लुकजी यादवराव ने अपने अश्वों की वल्गा उत्तर की ओर मोड़ दी है...तो वे सुनकर व्यथित हो उठे। अनेक शंकाओं के भूत उनके मस्तिष्क को घेरने लगे। उन्होंने मलिक अम्बर और मालोजी को तुरन्त बुलवाया। वे समीपवर्ती कक्ष में किसी योजना में लगे हुए थे। सूचना-पाकर दोनों क्षिप्रगति से सुल्तान के मत्रणा-कक्ष में आ उपस्थित हुए। मलिक अम्बर सुल्तान की व्यथा को समझना था उसने उसे और अधिक बढ़ाना आवश्यक समझा। वह चाहता था सुल्तान लुकजी को भूल जाय। उसने कहा—"मेरे आका, खता मुआफ़ हो। खबर देर से मिली। वरना......।"

"वरना निजामशाही सैनिक लुकजी यादवराव के सैनिकों को पानी पिला देते ! क्यों ?

सुल्तान ने कटाक्ष किया।

सुल्तान के इस अप्रत्याशित रूप से मलिक अम्बर और मालोजी ठगे से रह गये। उनसे कोई उत्तर बन नहीं पा रहा था। दोनों सामन्त मंत्र-मुग्ध-से हो गये।

"यदि मालोजी चाहते तो लुकजी के घोड़े की रास पकड़ लेते और...! सुल्तान कहते हुए खड़े हो गये। उन्होंने दूसरा तीर मालोजी-राजे पर फिर छोड़ा। मालोजी पर यह करारा व्यंग था, उनके मानस को चुनौती थी। उन्होंने विनयपूर्वक यही कहा—"सुल्तान बहते पानी को रोकना सरल नहीं है। फिर भी यदि आदेश दें तो लुकजी और उनके साथियों को बाँध लाऊँ।"

सुल्तान ने एक ठहाका लगाया । ठहाके की गूँज से कक्ष भर गया । क्षणभर पश्चात् सुल्तान ने कहा—"सामन्त मालोजीराजे और मंत्रिवर मलिक अम्बर की ताकत पर हमें भरोसा है किन्तु दोनों मिलकर भी उस राजपूत को रोक नहीं सके। उसकी तलवार की हमें जरूरत थी लेकिन अब वह···"

सुल्तान ने एक गहरी श्वास छोड़ी और चुप हो गये । एक नवीन कल्पना ने उनके मानस को झकझोर दिया । उन्होंने अपनी आँखें बन्द कीं और अपने आसन पर बैठ गये । उनके मुख से निकला—

"सिंदखेड़ से उत्तर की ओर··· !"

"सुना है, लुकजी ने मुग़लों की अधीनता स्वीकार कर ली है ।"

यह तथ्य मलिक अम्बर ने प्रकट किया ।

"यह सच है मलिक, अम्बर !

"मालूम होता है सुल्तान का जहोजलाल भूल गया, सामन्त-प्रमुख ।"

"मलिक अम्बर !" सुल्तान ने रहस्य प्रकट किया, यदि उस दिन दरबार में हम सावधानी नहीं बरतते तो······तो जानते हो क्या होता ?

"सुल्तान का इकबाल बुलन्द हो !"

"······तो अहमदनगर मुग़लों के जाल में फँस ही चुका था । हमारे खैर ख्वाह ही मुग़लों के हो गये हैं । हमारे दोस्त ही हमें मुग़ल सल्तनत के सामने झुकाने को तैयार हैं । हम हर्गिज, हर्गिज मुग़लों की अधीनता स्वीकार नहीं करेंगे । अहमदनगर की निजामशाही टूट जायेगी किन्तु झुकेगी नहीं । सुना, मलिक अम्बर ? मालोजीराजे सुनते हो ?

"मालोजी के हाथ में करवाल है तब तक अहमदनगर की एक अँगुलि भर धरती कोई नहीं ले सकता ।" मालोजी ने सोत्साह कहा ।

"सुल्तान का इकबाल आसमान को चूमेगा, खुदाबन्द ! लुकजी आए दिन अहमदनगर के लिये सरदर्द बन गये हैं । दरबार में अब

भी कुछ लोग ऐसे हैं जो लुकजी के इशारे पर हमें नचाने का ख्वाब देख रहे हैं।

"उन्हें कड़ी से कड़ी सजा दी जायगी।"

अब, सन्तोष की श्वासें सुल्तान को स्वस्थता प्रदान करने लगी थीं। उन्होंने कहा, "मालोजी दिल्ली-सम्राट् का हाथ लुकजी की पीठ थपथपाने लगा है। सावधानी की बड़ी आवश्यकता है।"

'किन्तु मालोजी के करवाल का किसी से परिचित नहीं, सुल्तान आलीजाह, यदि निजामशाही के विरुद्ध किसी ने आँख उठाई तो उसकी आँख नहीं रहेगी।"

सुल्तान दोनों घुटनों पर हाथों को टेकते हुए उठ खड़े हुए और मालोजी के समीप पहुँचकर उनके कन्धे थपथपाने लगे। वे बोले—

"मालोजी अहमदनगर की निजामशाही को तुम्हारी तलवार पर नाज़ है।" मालोजी ने अपना मस्तक धरती की ओर झुका लिया।

सुल्तान ने मलिक अम्बर को एक आँख का संकेत किया और कहा—"अब हम एकान्त चाहते हैं।"

मालोजी तुरन्त चल दिये। मलिक अम्बर ने जाते-जाते मालोजी से कहा—"मैं अभी आता हूँ, भोंसला सामन्त, मेरा इन्तजार करना!"

मालोजी कक्ष छोड़ चुके थे किन्तु मलिक अम्बर और सुल्तान वहीं बैठ गये।

मलिक ने कहा—'मालिक, काँटे से काँटा निकाला जाय!"

"मतलब!"

"खुदाबन्द, निजामशाही का आफ़ताब दिनों दिन तेजी से चमकता रहे। मराठे और भोंसलों को मुग़लों के विरुद्ध उभारा जाय।"

"भोंसले और मराठे, दोनों हमारी सल्तनत के लिये जरूरी हैं। यादव राजपूत अब हमारा साथ नहीं देंगे।"

"मुगल सिपाहियों की रणभेरियाँ मालोजी की पाटिलदारी की सीमा पर गूँजती रहेंगी। मालोजी हमारे लिये ढाल बनकर···

"यह तो वक्त ही बतलायेगा।"

"हमें उसका इन्तजार करना होगा, आलीजाह।"

कहकर मलिक अम्बर ने सुल्तान से विदा ली। सुल्तान खोये-खोये से अपनी शैया पर पौढ़ गये।

"बड़ी बेगम उनका इन्तजार कर रही हैं।" एक यवनी दासी ने आकर निवेदन किया।

"बेगम हमारा इन्तजार कर रही हैं? लेकिन हम किसी और का इन्तजार कर रहे हैं। अच्छा, चल हम अभी आते हैं।"

दासी जैसे आई थी वैसे ही उलटे पाँव लौट गई। अहमदनगर निजामशाही का सुल्तान आज अपने को विवश पा रहा था। उनके मुख से सहसा निकला—"लुकजी तुम फिर आओगे।"

अहमदनगर निजामशाह सुल्तान के मन में न जाने कौनसा विचार उभरा! किन्तु वह अप्रकट ही रह गया।

सुल्तान अपने प्रमदाकक्ष की ओर लम्बे-लम्बे डग भरते चले जा रहे थे।

चार

शाहजी ग्रौर जीजाबाई को दाम्पत्य-सुख नहीं मिला। लुकजी यादवराव निजामशाह की सेवायें ठुकराकर मुग़लों की चाकरी में चले गये थे। इस कारण भी दोनों परिवारों में विद्वेष की परिखा गहरी होती चली गई। जीजाबाई ने एक पुत्र को जन्म दे दिया था और उसका नामकरण संस्कार ग्रवश्य धूमधाम से हो गया था। बालक का नाम सम्भाजी रखा गया। पारिवारिक परम्पराओं का निर्वाह लुकजी ने ऊपरी मन ही किया था। सिंदखेड़ से पुरोहित और उनका पुत्र ग्रचलोजी भेंट अवश्य लाये किन्तु उन भेंटों में सरसता नहीं थी।

शाहजी अब वयस्क हो गये थे और उन्होंने भी सुल्तान निजामशाही की सेवा में ग्रपने को लगा दिया था। सुल्तान निजामशाह ने मालोजी के पश्चात् उनको प्रदत्त पद और अधिकार शाहजी को भी दे दिये। मालोजी का सारा भार अब शाहजी पर था। शाहजी के भाई शरीफजी ने अपने अग्रज का हाथ बटाया, उनके सुख-दुःख में सहयोग दिया। मालोजी के बड़े भ्राता बिठोजी के पुत्र भी शाहजी का साथ दे रहे थे। अस्तु, शाहजी की शक्ति निरन्तर बढ़ती जा रही थी। पारिवारिक संगठन ने उनकी बाहुओं को सुदृढ़ कर दिया। ग्रब सुल्तान को शाहजी और मलिक ग्रम्बर पर विश्वास था।

शाहजी और उनका परिवार तन-मन से निजामशाही की समृद्धि में निरत हो गया। निजामशाह का प्रबलतम शत्रु मुग़ल-सम्राट् था। भोंसलों की शक्ति ने उनसे लोहा लेना जैसे अपना कर्त्तव्य समझ लिया था। शाहजी के नेतृत्व में भोंसला-वंश अपनी राष्ट्रीयता को समृद्ध करने लगा। सभी अनुभव करते थे कि भोंसलों की शक्ति के बिना दक्षिण की स्वाधीनता असम्भव हो जायेगी। यदि मुग़लों से कोई टक्कर ले सकता है तो शाहजी भोंसला। कालान्तर में मलिक अम्बर ने संसार से मुक्ति पा ली। निजामशाही में यदि अब किसी का वर्चस्व था तो शाहजी का। सुल्तान निजामशाह के मन में एक शत्रु छिपा हुआ था, वह उस शत्रु से प्रतिकार लेना भूला नहीं था। लुकजी यादवराव सुल्तान को बगल में काँटे के सदृश चुभता चला आ रहा था। एक दिन उसने मुस्लिम परामर्शदाताओं के कहने में आकर लुकजी यादवराव को अपने यहाँ आमंत्रित किया। लुकजी यादवराव मुग़लों के समर्थक थे, फिर भी विश्वास कर, वे सुल्तान का निमंत्रण स्वीकार कर बैठे। निजामशाह ने लुकजी से दौलताबाग के दुर्ग में भेंट की। लुकजी यादवराव अपने पुत्र अचलोजी और रघुजी यादव, अपने भाई जगदेवराव के पुत्र बहादुरजी और अपने पौत्र यशवन्तराव तथा कुछ अन्य साथियों के साथ आए।

निजामशाह ने उनकी अभ्यर्थना की और राजनीति का चक्र घूमने लगा। दौलताबाद-दुर्ग पूर्व नियोजित आयोजन के अनुसार घेर लिया गया। अहमदनगर का मुस्लिम सेनापति इस षड्यंत्र में सम्मलित था।

निजामशाह ने लुकजी को कई प्रलोभन दिये, जागीर और सम्पत्ति का लालच दिया किन्तु वे टस से मस न हुए। उन्होंने स्पष्ट कहा—

"सुल्तान की सेवायें तो छोड़ चुका हूँ और शाहजहाँ को सहयोग देने का वचन दे चुका हूँ तब मैं अपने वचन के अनुसार अपनी शक्ति मुग़लों की रक्षा में ही लगाऊँगा।"

सुनकर निजामशाह विचलित नहीं हुए । उन्हें तो लुकजी के व्यक्तित्व से यही आशा थी । फिर भी उन्होंने कहा—

"जिन यादव राजपूतों ने निजामशाही को समृद्ध किया है, क्या वे अब उसके विनाश को देखेंगे ?"

"समय की बात है महाबली, यदि मुग़ल-सम्राट् हमे आदेश दें कि हम अहमदनगर पर आक्रमण करें तो हम कर्त्तव्य-विमुख कैसे हो सकेंगे ?"

"तब तो यादवराव शायद अहमदनरर की ईंट से ईंट बजाने को तैयार हो सकते हैं ।"

"निःसन्देह सुल्तान, सैनिक का कर्म स्वतः स्पष्ट है यदि मुग़ल-सम्राट् आदेश दें—यह शर्त अवश्य है ।"

एक दीर्घ निःश्वास छोड़ते हुए निजामशाह ने कहा—

"लुकजी यादवराव भूल रहे हैं, उनकी शक्ति-सम्पन्नता इसी धरती पर बढ़ी है । यहाँ की सम्पत्ति पर सल्तनत का अधिकार है ।"

सुल्तान ने धमकी दी, किन्तु क्षत्रिय धमकियों को चिन्ता नहीं करता । लुकजी को सुल्तान का कथन दम्भ लगा । उन्होंने कहा—

"यदि यादवों में शक्ति होगी तो पुनः प्रात कर लेंगे ।"

"फिर प्राप्त कर लेंगे ?" सुल्तान ने दुहराया और लुकजी ने उसी स्वर में कहा—"निःसन्देह सुल्तान अपने स्वत्त्व की रक्षा तो करनी ही होगी ।"

सुल्तान के तेवर चढ़ गये । भीतर का कलुष उजागर हो आया । उन्होंने अपने सैनिकों से कहा—"एक भी यादव निकल न पाये ।"

और तलवारें खिच आईं । यादवों के स्वर्ण कृपाण-कोष कटि-प्रदेशों में रिक्त हो झूलने लगे । तलवारें खटाक्-खटाक् करने लगीं । अवसर देख निजामशाह तो एक द्वार से निकल गये किन्तु उनके भाड़े के टट्टू अपनी आहुतियाँ देने लगे । लुकजी और उनके साथी संख्या में इनेगिने ही

थे परन्तु उन्होंने उस मंत्रणा-कक्ष को निजामशाही सैनिकों के रक्त से भर दिया। रक्त की सरिता बहने लगी। उपस्थित सैनिकों का पक्ष ढीला पड़ता जा रहा था, नई क्षक्ति आने लगी। रुण्ड-मुण्ड गिरने लगे। एक-एक यादव एक साथ कई सैनिकों को भुट्टे की तरह काट रहा था। जब यादवों पर किसी भाँति नियंत्रण नहीं हुआ तो नये सैनिक आ गये। एक-एक यादव पर दस-दस सैनिक। निजामशाह के आदेश से यह सब हो रहा था किन्तु वे सम्मुख नहीं आ रहे थे। सुल्तान की कुटिलता नाचने लगी। राजनीति का कुचक्र तीव्र होने लगा। "अतिथियों के प्रति विश्वासघात !" लुकजी के मुख से निकला और वे कक्ष से बाहर आ गये, उनके साथी भी निकल आये थे कि सहसा सहस्रों निजामशाही सैनिक अपने भाले लेकर उन पर टूट पड़े। एक भाला लुकजी की पीठ में घुस चुका था। रक्त का फव्वारा फूट चला। किन्तु वाह रे वीर यादव गिरते-गिरते भी कई मुस्लिम सैनिक धराशायी कर दिया। एक साथ बीस भाले अब उस गिरती-पड़ती देह में समा गये। पिता को गिरते देख दोनों पुत्र अचलोजी और रघुजी वहाँ आ गये और आक्रमणकारियों को खण्ड-खण्ड कर दिया। उन्होंने अपनी तलवारों में शत्रु सैनिकों के सिर उठा लिये और दुर्ग के बाहर फैंक दिये। अब एक दूसरा सैनिक दल आ गया, उसने यादवों पर भयंकर मार मारनी आरम्भ कर दी। अब की आघात लुकजी के पौत्र यशवन्तराव पर था, यशवन्तराव ने, अकेले ही बीस सैनिकों को यमपुर पठा दिया था किन्तु उन पर भी पीछे से आघात किया गया और वे भी अपने दादा के साथ कीर्तिशेष हो गये। बहादुरराव और जगदेवराव लड़ते-लड़ाते, मारते-काटते शत्रुदल के घेरे से बाहर निकल गये। उनके अश्व अपने स्वामियों की प्रतीक्षा कर रहे थे, वे बच निकले।

जब शाहजी ने इस हत्याकाण्ड का समाचार सुना तो स्तब्ध रह गये। इस निरंकुश, विश्वासघातपूर्ण जघन्य कृत्य के प्रति मराठा अनुयायी भी विचलित हो उठे, उसमें निजामशाह के विरुद्ध घृणा और

विरक्ति की भावना ने जन्म ले लिया। शाहजी अपने श्वसुर के प्रति इस अनीतिपूर्ण कपट-व्यवहार को देख कर वितृष्णा से भर उठे। उन्हें मुग़लों से आ मिलने के लिये निरन्तर प्रलोभन दिये ही जा रहे थे। शाहजी ने निजामशाह के पक्ष का परित्याग कर दिया और शाहजहाँ की सेवा स्वीकार कर ली। शाहजी डेढ़ वर्ष तक मुगलों के पक्षधर बने रहे। बीजापुर के सेनापति मुरार जगदेव ने इससे क्रुद्ध होकर शाहजी के पूना स्थित निवास को अग्नि की भेंट कर दिया। निजामशाह में नित्य-नये नाटक खेले जाने लगे। कालचक्र बढ़ने लगा, मंत्री फतहखाँ ने अपने स्वामी मुर्तजाशाह का वध कर दिया और अन्त में उसने भी मुग़लों की अधीनता स्वीकार करली। इसी बीच जब शाहजहाँ बुरहानपुर से युद्ध-संचालन कर रहा था, उसकी पत्नी मुमताज़ का देहान्त हो गया। शाहजहाँ इस विपदा को सहन न कर सका और वह तुरन्त आगरा चल दिया। जाते समय शाहजहाँ युद्ध के सूत्र अपने सेनापति महाबतखाँ के हाथों में सौंप गया। अब शाहजी को भी मुग़ल अधीनता से निकलने की भावना को बल मिला। वे मुग़ल-पक्ष त्यागकर पुनः अहमदनगर आ गये और पतनोन्मुखी अहमदनगर में एक बार पुनः प्राण-संचार करने की योजना सँजोई, किन्तु फतहखाँ और उसके स्वामी हसन निजामशाह को महाबतखाँ ने बन्दी बना लिया और उन्हें मुग़ल कारागृह में भेज दिया। होते-होते दक्षिण भारत के पाँच प्रारम्भिक मुस्लिम राज्यों में केवल बीजापुर और गोलकुण्डा का अस्तित्व रह गया था। शाहजहाँ अहमद-नगर के अधिकांश भाग पर अपना आधिपत्य स्थापित कर चुका था। बीजापुर पर उसकी दृष्टि लगी हुई थी। उसने आगरा से लौटकर युद्ध के सूत्र स्वयं सँभाल लिये क्योंकि शाहजी से युद्धरत रहने पर भी महाबतखाँ को असफलता का ही मुँह देखना पड़ा था। अन्त में शाहजहाँ द्वारा भर्त्सना किये जाने पर उसने आत्मघात कर लिया। अब शाहजहाँ की मुग़लवाहिनियों ने दक्षिण को पूरी तरह विजय करने के लिये कूच कर दिया। शाहजी की पाटिलदारी इस अभियान के बीच

मार्ग में पड़ती थी। शाहजी इस समय अपनी पाटिलदारी में जीजाबाई और अपने पुत्र सम्भाजी के साथ थे। उन्होंने प्रतिरोध किया किन्तु मुग़लवाहिनियों का भार सहन करना उनके लिये भारी पड़ गया, उन्होंने सम्भाजी को साथ लिया और अपने अश्व की वल्गा बीजापुर की ओर मोड़ दी। मुग़लवाहिनियाँ निरापद बीजापुर की ओर प्रयाण कर गईं। जीजाबाई ने मुग़ल-सैनिकों से आँख-मिचौनी खेली और वहाँ से अदृश्य हो गईं। अपने कुछ परिजनों एवं सैनिकों के साथ पतिगृह को आपद्ग्रस्त समझकर वहाँ से चल पड़ीं और अनेक कठिनाइयों से जूझती हुई वे शिवनेर दुर्ग में जा पहुँचीं।

यह दुर्ग पहाड़ी-प्रदेश में था। जीजाबाई के साथ उस समय कुछ पारिवारिक सेवक अवश्य थे, किन्तु उनकी संख्या नगण्य ही थी। दुर्ग की स्थिति भी दयनीय थी। उसकी दीवारें जीर्णशीर्ण हो चुकी थीं। दुर्ग-रक्षकों के पास इतने साधन तो थे नहीं जो उसकी दयनीय स्थिति को सुदृढ़ बनाये रखते। दुर्ग के समीप भयानक, निर्जन और उदास बेहड़ था। हाँ, बन-पशुओं से वह वन अवश्य आक्रान्त रहता था। तेन्दुए इधर-उधर घूमते रहते थे। दुर्ग में बहुत कम निवासी थे। प्रातःकाल जब दुर्ग के द्वार अनावृत किये जाते तो पानी भरने के लिये कूओं पर जाती हुई ललनाएँ तेन्दुओं के पद-चिन्हों को चीह्नती जाती थीं। उन्हें भयग्रस्त रहना पड़ता था—कहीं किसी बड़ी झाड़ी में तेन्दुआ महाराज छिपे न बैठे हों। तेन्दुओं का विश्वासघात सर्व-साधारण पर प्रकट था। वह धोके से ही मनुष्य पर आक्रमण करता है। कुसुम-सी मानव-कलियों का भक्ष्य उसे प्रिय लगता है।

मानव-रक्त का प्यासा कौन नहीं है ?

ऐसी बियाबान और सुनसान पार्वतीय भूमि में जीजाबाई आकर रही थीं। उन्हें स्मरण हो आता था—अपने पिता का वैभव ! बड़े-बड़े प्रासाद कक्ष ! बड़ी-बड़ी रजत-आसन्दियाँ और पर्यंक ! अनेक दास-दासियाँ

कोई पंखा झलतीं तो कोई अन्य सेवा में निरत रहती थीं। पितृ-सुख का अनुभव जीजाबाई ने दाम्पत्य-जीवन में नहीं भोगा। शिवनेर-दुर्ग का आवास दरिद्रनारायण के आवास-तुल्य था। मार्ग बीहड़ होने के कारण दुर्ग के लिये नित्य साधन नहीं जुटाये जा सकते थे। बटमारों का आतंक सदैव बना रहता था। दैनिक उपभोग की सामग्री तक सुविधापूर्वक उपलब्ध नहीं हो पाती थी। यदाकदा आसपास ही, मुग़ल और बीजापुर के सैनिक-दलों में भिड़न्त हो जाया करती थी। बीजापुर के सैनिकों ने अपनी आखेट-भूमि इस भूमि को बना रखा था। कारण सुल्तान उनके वेतन तक चुकाने में भी यदाकदा असमर्थ हो जाता था। अफ्रीकी, पठान, अबीसीनियाई, अरब, तुर्क उन सैनिकों में थे। वे प्रजा पर उत्पीड़न किये बिना नहीं रहते थे। प्रायः हिन्दू नागरिकों को वे अपना आखेट बना लेते। कृषकों की पकी फसलें वे काट ले जाते। उनके चरागाहों से पशुओं को हाँक ले जाते। इतना ही नहीं उस भूमि के निवासियों के बच्चों और युवतियों तक को बलात् छीन ले जाते। ऐसी अराजकता से भरी भूमि में जीजाबाई ने शरण ले रखी थी।।

जीजाबाई में धार्मिक प्रवृति कूट-कूट कर भरी हुई थी। निडरता उन्हें पितृ-पक्ष से मिली ही थी। जिस परिवार में ब्याह कर आई थीं वह भी निर्भीक, निडर था। दोनों पक्षों का प्रभाव उनके जीवन पर पड़ चुका था। संघर्षों से जूझना जीजाबाई ने भलीभाँति सीख लिया था। और अब तो पति का आश्रय भी उनके सिर से उठ गया था। वे आसन्न प्रसवा थीं। जीजाबाई को बालक को जन्म देना था! उन्होंने अपने पास की कुछ महिलाओं का सहयोग ही पर्याप्त समझा। वे धार्मिक बिधि-विधानों को नित्य सम्पन्न करतीं और प्रसन्न रहतीं। ऐसी स्थिति में वे उदासीन रहना कर्त्तव्य-विमुख मानती थीं क्योंकि भावी सन्तान पर उदासीनता का दुष्प्रभाव पड़ना सहज था। जीजाबाई गर्भावस्था में अपने कक्ष की भित्तियों पर त्रिपुटा अंकित करतीं, उन्हें

सिन्दूर से सँजोतीं । शिवा-भवानी की पूजा-अर्चना घृत, मधु एवं शर्करा से नित्य प्रति करतीं। यथार्थ में वे अपनी भावी सन्तान के प्रति पूर्णतः सतर्क और जागरूक थीं। उनकी मनोकामना वीर पुत्र को जन्म देने की थी। इन्हीं दिनों पास-पड़ोस की महिलाएँ भावी शिशु के लिये अनेक भविष्यवाणियाँ प्रसारित करती रहती थीं। उससे जीजाबाई का मन हिलोरें लेने लगता था। सुदूर दक्षिण में जहाँ स्वाधीनता की स्मृति विलुप्त नहीं हुई थी, पुनर्जीवन की आशा मृत नहीं हुई थी भाँति-भाँति की किम्वदन्तियाँ प्रसारित होती रहती थीं। जीजाबाई के संपर्क में जो भी आता, कहता जीजाबाई के गर्भ में निःसन्देह बालक है। सर्वत्र ऐसी मान्यता और धारणा बनती जा रही थी, क्योंकि जन-मानस में यह प्रसारित हो चुका था, "उद्धार का समय समीप है, हर्ष और आनन्द के गीत गा-गाकर कुमारियाँ उद्‌घोष कर रही हैं। आकाश पृथ्वी को सुमन-वृष्टि से पूरित कर रहा है।" यह धारणा बलवती होती जा रही थी और जीजाबाई प्रसूता बनीं। उन्होंने सचमुच एक बालक को जन्म दिया। शिवनेर का दुर्ग मंगलवाद्य और कास्य घण्टों से गुंजरित हो गया। दुर्ग में मंगल-गीत सुनाई पड़ने लगे। जीजाबाई का मन-मयूर पुनः पुत्र पाकर तरंगित हो उठा, किन्तु सहसा उन्हें स्मरण हो आया—उनके पतिदेव नहीं हैं। वे तो बीजापुर की सैन्यों का नेतृत्व कर रहे हैं। बीजापुर के अस्तित्व को सुदृढ़ करने में लगे हैं। पुत्र-जन्म के समय पिता को उसके समीप रहना चाहिये था। प्रसूता की शैया के समीप शाहजी को होना चाहिये। यह परम्परा टूट रही है, इसका विक्षोभ जीजाबाई के मन पर सहज ही अंकित हो गया। वे मन मार कर रह गईं—विधि की विडम्बना !

प्रसूता-कक्ष के द्वार बन्द थे, इनी-गिनी कुछ प्रौढ़ और वृद्धाएँ वहाँ अवश्य थीं। दुर्ग के वातायनों के भी कपाट बन्द थे। वायु का वेग यदाकदा उन पर आघात अवश्य कर जाता था। जीजाबाई को लगता

जैसे वायु उनकी पीड़ा का हरण कर रहा है। पति नहीं तो वायु बालक को मंगल-आशीर्वाद दे रहा है, वायु मंगलाचरण कर रहा है। वायु-मण्डल कीर्तिमय होता जा रहा है। जब जीजाबाई प्रसव-पीड़ा के कारण अपने नेत्र बन्द करतीं। तो उन्हें एक प्रकाश दिखाई देता। तेजोमय प्रकाश। अखण्ड-प्रकाश उन्हें भौंसला परिवार का अभ्युदय दिखाई दिया। सहसा उन्हें राज-पुरोहित की कल्पना-मूर्ति मुखाकृति दीखी—लम्बी जटा, श्वेत, धवल कौशेय वस्त्र धारण किये। आशीर्वाद का वरद-हस्त उठाये। लम्बी मुखाकृति, तेजस्वी आँखें—वही आकृति जो कभी उनके पिता के प्रासाद में आती-जाती रहती थी—राज-पुरोहित और जीजाबाई का हृदय विषादोन्मुख हो उठा। कहाँ है, राजगुरू, कहाँ हैं राज-पुरोहित ? कहाँ है बालक के पिता ? कहाँ हैं मेरे सौभाग्य देवता ? विषादाच्छन्न स्थिति में जीजाबाई डूबती चली गईं। वह विचार उठीं, बालक को सूप में कौन लिटायेगा ? उसकी जिह्वा पर मधुपर्क का विधान कौन रचेगा ? बालक के भाल का चुम्बन कौन लेगा ? कहाँ है बालक के पिता ? बालक अभागा है ! मन के किसी कोण से एक टूटा-सा, अस्फुट स्वर उभरता उन्हें सुनाई दिया। वह चौंकी—नहीं, नहीं। कुटिल कल्पना जैसे उठी थी तुरन्त विलीन भी हो गई। मेरा बालक सौभाग्य लेकर जन्मा है, वह वीर बनेगा, मातृ-भक्ति में अथवा पितृ-भक्ति में वह पीछे नहीं रहेगा। वह राम होगा राम ! माता और पिता का आज्ञापालक, दानव-दैत्यों का संहारक, जन-जन का प्रिय, धर्म का रक्षक, परिवार का कुल-दीपक, देश का भाग्य-विधाता···और मातृ-भावनाएँ विस्तृत होती गईं।

सहसा द्वार पर एक साथ कई आघात हुए। वे वायुवेग के आघात नहीं थे, कराघात थे। द्वार-रक्षिका ने कक्ष-भवन का द्वार खोला तो देखा, एक ब्राह्मण खड़ा है। द्वार-रक्षिका विस्मित हो उठी ! उसकी डाढ़ी लम्बी और धवल थी। आँखों में तेज था।

"बालक को आशीर्वाद देने आया हूँ। जाकर कहो, जीजाबाई से।" ब्राह्मण ने आदेश के स्वर में कहा।

द्वार-रक्षिका ब्राह्मण की वाणी सुनकर स्तब्ध रह गई। अभी तक बालक के जन्म का समाचार दुर्ग की भित्तियों से बाहर नहीं पहुँचा था। मन को शंका के भूत उसे घेरने लगे। बालक के जन्म का पता क्या शत्रु को लग गया ? हाँ, पता लग गया ! उससे अपनी कल्पना को पुष्टि ही किन्तु धैर्य ने उसका साथ नही छोड़ा था उसने सहज ही कहा—

"ब्राह्मण भिक्षा की इच्छा से आये हो तो भिक्षा ला दूँ, किन्तु यहाँ किसी बालक ने जन्म नहीं लिया और न जीजाबाई ने इस दुर्ग में कभी प्रवेश ही किया।"

ब्राह्मण मुस्कराया उसने द्वार-रक्षिका की स्वामि-भक्ति की मन ही मन सराहना की। ब्राह्मण दूर से चलकर आया था। दुर्ग पर पहुँचने में उसे श्रम करना पड़ा था, अस्तु श्रम-सीकर उसके प्रशस्त ललाट पर छा गये थे। श्रम-बिन्दुओं को अपने उत्तरीय से पोंछते हुए उसने फिर कहा—

'पुत्री, ब्राह्मण के साथ छल शोभनीय नहीं होता। आज का वातायन कह गया है, तुम्हारी स्वामिनी ने पुत्र को जन्म दिया है। वीर योद्धा गो-ब्राह्मण-प्रतिपालक होगा बालक। शत्रु विघातक !"

शत्रु शब्द सुनकर द्वार-रक्षिका पीछे हट गई। वह कपाट भिड़ाने लगी तो ब्राह्मण ने आश्वासन के स्वर में कहा—

"पुत्री जीजाबाई को कहो सिंदखेड़ से ही चलकर आया हूँ। जीजाबाई को लिवाने आया था किन्तु आसपास की धरती की सुगन्ध ने सब कुछ स्पष्ट कर दिया है। जब मैंने देखा, उन वृक्षों को, जिन पर कोकिलें कूक रही थीं, जिन पर अनेक पक्षी मधुर रव उच्चारित कर रहे थे, तो मैं आश्वस्त हो गया कि जीजाबाई ने बालक को जन्म दे दिया है। घर

में पिता नहीं है तो बालक का संस्कार अधूरा रह जायगा ! नहीं ऐसा नहीं होगा। पुत्री जीजाबाई भाग्यवती हुई है।"

द्वार-रक्षिका को ब्राह्मण से वार्तालाप में विलम्ब लगना अप्रिय लग रहा था। द्वार खोलना ही उसे अपनी भूल लगी। किन्तु अब जब उसने देखा कि यदि ब्राह्मण के साथ कोई और होता—अर्थात् शत्रु होता तो द्वार खुलने पर अवश्य बलात् प्रवेश करता—ब्राह्मण शत्रु होता तो उसके पीछे कहीं आसपास अवश्य सैन्य-दल होता और वह दुर्ग में प्रवेश कर लेता।

अतः द्वार-रक्षिका को निश्चय हो गया कि ब्राह्मण शत्रु नहीं है। पुनश्च भवन में किसी नवागन्तुक के प्रवेश देने के लिये गृहस्वामिनी से पूछना अनिवार्य था। उसने ब्राह्मण से विदा लेकर कपाटों पर अर्गला चढ़ा दी और आकर समस्त चर्चा जो उसके तथा ब्राह्मण के मध्य हुई थी, जीजाबाई को बताई ! जब द्वार-रक्षिका ने सिन्दखेड़ के नाम का उच्चारण किया तो उसे कुछ उस व्यक्ति के प्रति लगाव अवश्य हुआ और उसने द्वार-रक्षिका को कहा—"यदि अकेला है तो आने दे किन्तु सावधान रहना ! कहीं शत्रु ताक-झाँक में न हो।"

जीजाबाई किसी भी अचिन्त्य संकट को मोल लेने की स्थिति में नहीं थी।

बूढ़ा ब्राह्मण निरस्त्र है स्वामिनी।" द्वार-रक्षिका ने आश्वस्त करने का प्रयत्न किया।

"ब्राह्मण निरस्त्र ही होगा।......अच्छा जा लिवा ला।"

द्वार-रक्षिका त्वरा से द्वार पर जा पहुँची। एक छिद्र में से देखा केवल ब्राह्मण प्रतीक्षा कर रहा था। उसने द्वार के कपाट खोल दिये। उसने सविनय कहा—'पधारिये महाराज।' इतना कहने से पूर्व और द्वार खोलते हुए द्वार-रक्षिका ने अपनी दृष्टि इधर-उधर फेंक कर पुनः आश्वासन पा लिया था कि आसपास ब्राह्मण का कोई अन्य साथी तो वहाँ

नहीं है । जब ब्राह्मण ने दुर्ग में प्रवेश कर लिया तो उसने दुर्ग के कपाट पुनः बन्द कर दिये और ब्राह्मण को साथ लिवा लाई । ब्राह्मण प्रागंण पार कर उस स्थान पर आ पहुँचा जहाँ जीजीबाई थीं । ब्राह्मण ने जीजाबाई को एक बार गहन दृष्टि से देखा और फिर बालक पर एक दृष्टि डाली ! उनके हाथ ब्राह्मण को अभिवादन करने के हेतु उठ गये । फिर उन्होंने कक्ष की दीवारों पर दृष्टि-निक्षेप किया । उन्होंने देखा ढाल-तलवारें और बल्लम-भाले दीवार पर टँगे हैं । फिर उन्होंने उपस्थित महिलाओं पर दृष्टि डाली । पाया सबकी सब जैसे सन्नद्ध किसी आदेश की प्रतीक्षा में हैं । ब्राह्मण ने गम्भीरता धारण की और दीवार पर टँगी हुई तलवारों में से एक उतार ली । जीजाबाई विस्मय और अनिश्चितता की स्थिति में हो गई । वे सतर्क हो गईं, उन्होंने अपने बालक को अपनी छाती से लगा लिया । एक बार लगा कहीं धोका तो नहीं खा रही हूँ । जीजाबाई के संकेत पर उपस्थित प्रौढ़ाओं ने भी तलवारें और बल्लम सँभाल लिये और वे सभी जीजाबाई की ओर आगामी आदेश के लिये ताकने लगीं ।

ब्राह्मण ने उनकी ओर देखा और मुस्कराया । बोला—"इन सबकी आवश्यकता नहीं पड़ेगी पुत्रियों । शाहजीराजे का भेजा आया हूँ । राजे सुदूर दक्षिण में बीजापुर की यशःकीर्ति प्रस्तारित कर रहे हैं । यहाँ आना उनके लिये निरापद नहीं है, मुग़लों के गुप्तचर तुम्हें बन्दी बनाने के लिये घूम रहे हैं । बालक का वृत्ति-निर्णय संस्कार होना है उसी निमित्त आया हूँ । संस्कार करा कर चला जाऊँगा । सावधानी की विशेष आवश्यकता है ।"

ब्राह्मण तलवार लेकर प्रांगण में आ गया था । न जाने क्यों जीजाबाई को विश्वास होता गया कि अनहोनी जैसी कोई बात नहीं है और बालक के पिता समय पर नहीं आ पाये हैं तो वह इसी ब्राह्मण से वृत्ति-निर्णय संस्कार करा लेगी । जीजाबाई को अपनी अन्तरात्मा

पर विश्वास था। वे भगवद्-भजन करती थीं, उनकी आत्मा निर्मल थी। उन्होंने दासियों को सत्वर आदेश दिया—

"शीघ्र वृत्ति-निर्णय-संस्कार सम्पन्न करा लिया जाय।"

दासीवर्ग इधर-उधर शीघ्र गति से बिखर गया। दो परिचारिकाओं ने उसे आश्रय दिया। जीजाबाई बालक को लेकर प्रांगण में आ गईं। यथाविध प्रांगण में चौक पूरा गया। मंगल-कलश की स्थापना हुई। बालक को एक नये सूप में लिटाया गया। बालक रोया नहीं, मुस्कराता रहा।

ब्राह्मण ने मधुपात्र से अँगूठी के सहारे मधु लिया और बालक की जिह्वा पर टपका दिया। मंत्रोच्चारण चल रहा था। मधुसिक्त जिह्वा को बालक जैसे चाटने लगा। ब्राह्मण ने उसके भाल का चुम्बन लिया। ब्राह्मण जैसे कहीं खो गया। यथार्थ में पितृ-कर्तव्य का स्मरण उसे हो आया था। प्रांगण में समीप ही तलवार, कलम, हल, और अन्य वस्तुएँ क्रम से रख दी गईं। यह सब विधि ब्राह्मण के आदेशानुसार की गई थी। ब्राह्मण ने बालक को अञ्जलि में लिया और उन पदार्थों के बीच लिटा दिया। सब उत्सुकतापूर्वक प्रतीक्षा करने लगे, बालक का दक्षिण कर किस वस्तु की ओर संकेत करता है, अथवा किस वस्तु से छू जाता है—सब देखने लगे।

थोड़ी देर में बालक का दक्षिण हाथ तलवार को स्पर्श कर गया। जीजाबाई और ब्राह्मण गद्‌गद् हो उठे—

"सैन्यवृत्ति—तलवार का धनी!" ब्राह्मण के मुख से निकला। "बालक वीर होगा जीजाबाई, शत्रु इसके भय से आतंकित रहेंगे।"

ब्राह्मण ने नामकरण किया—'शिवनेर-दुर्ग में बालक का प्रादुर्भाव हुआ अतः इसका नाम शिवा!'

"शिवा!" माँ ने आत्म-विभोर होकर उच्चारण किया।

जीजाबाई जैसे कृत-कृत्य हो गई। सन्ध्या हो चली थी। ब्राह्मण ने रात्रि वहीं व्यतीत की।

●

पाँच

शिवाजी अहर्निश चन्द्रकला के सदृश बढ़ने लगे। उनकी बाल-सुलभ क्रीड़ाएँ जीजाबाई को आह्लादित करती रहतीं। वे नये-नये स्वप्न सँजोने लगतीं। भावी के सुखद दिनों की कल्पना में वह डूबने-तैरने लगतीं। उन्हें शिवाजी के पिता की ओर से सन्तोष नहीं मिल पा रहा था। बीजापुर के सुल्तान की सेवा में रहकर उनका पति अपनों पर ही बर्बरता और विनाश का खड्ग उठाये, जीजाबाई के धर्म-प्राण हृदय को असह्य हो उठा था। उन्हें प्रतीत होने लगा कि मुग़ल-सीमान्त की निकटवर्ती पाटिलदारी में शाहजी को अभिरुचि नहीं रह गई है। अब वे मुस्लिम शासक के पूर्णतः प्रतिनिधि बन गये थे। वास्तव में शाहजी दरबारी ठाटबाट में रहते थे। माथे पर लम्बा तिलक अंकित करते, और बहुमूल्य आभूषण एवं वस्त्र धारण करते। शाहजी ने मोहते परिवार के एक अन्य तुकाजी नामककन्या से विवाह भी कर लिया था, उससे एक पुत्र व्यंकोजी की उत्पत्ति भी हो चुकी थी। दूसरी ओर मुस्लिमवर्ग पदाधिकारी भी शाहजी से ईर्ष्या करने लगा था, उनका बढ़ता हुआ वैभव उनकी आँखों में खटकने लगा किन्तु उन पर सुल्तान की कृपा-दृष्टि बराबर बनी हुई थी, अतः शाहजी यदा-कदा होने वाले विरोधियों के प्रबल विरोध को भी झेल लेते थे।

शाहजी जीजाबाई के प्रति निरन्तर अनुरक्त होते चले जा रहे थे। जीजाबाई को अनेक दुःसंघर्षों का सामना करना पड़ा, परिणाम स्वरूप उनकी देह-कान्ति क्षीण होती चली गई। अब तो शिवाजी का पालन-पोषण ही उनके लिये प्रधान कर्त्तव्य रह गया। वे उसमें खो गई थीं। जीजाबाई शिवाजी को वीरतापूर्ण कथा-कहानियाँ सुनातीं और उनमें साहस भरतीं और शिवाजी माँ के उपदेशों में पूरी रुचि लेते, अपने जीवन में उन सुकृतों को ढालने का मन ही मन संकल्प लेते, जिन्हें माँ बताती। माँ-बेटे तथा अन्य जन जो किले में रहते, कभी-कभी संकट की सूचना सुनते तो चिन्तित हो उठते। सभी को भय था, शत्रु को जीजाबाई और शिवाजी का पता न चल जाय। मुग़ल-शक्ति शाहजी और उनके परिवार के लिये राहु-केतु बनी हुई थी। ऐसी शंकित और चिन्तित परिस्थितियों में जीजाबाई और शिवाजी बढ़ रहे थे।

और जब शिवाजी ने छठे वर्ष में पदार्पण किया तो माँ-बेटों पर अकस्मात् बज्र आ टूटा। किसी विश्वासघाती ने मुग़ल-नायक महलदारखाँ से घूँस में अच्छी राशि पाकर शिवनेर दुर्ग का रहस्य प्रकट कर दिया। त्र्यम्बकगढ़ के दुर्गरक्षक महलदारखाँ के नेतृत्व में मुग़ल-सैनिकों ने शिवनेरदुर्ग को घेरने और जीजाबाई तथा शिवाजी को बन्दी बनाने का षड्यन्त्र रचा। यह रहस्य जीजाबाई अथवा उनके इने-गिने व्यक्तियों में-से किसी को भी ज्ञात न हो सका। सैनिक-शक्ति का सामना करने की सामर्थ्य भी इस पुराने दुर्ग में नहीं थी।

ज्येष्ठ तप कर समस्त वन-खण्डों को झुलसा गया था। वृक्षों पर पत्तियाँ तक नहीं थीं। ठूँठ ही ठूँठ चारोंओर दीखते थे कि आषाढ़ की प्रथम वर्षा का उन्मेष हुआ। धरती की तपन मिटने लगी नदी-नाले सहसा प्रवाहमान हो उठे। दुर्ग के नीचे सकरी-तंग घाटियाँ कुहरे से आपूर्ण हो गईं। ताम्र-कुक्कुट चिड़ियों ने कूक-कूक कर

झंझावात आने की सूचना दी । प्रकृति विलोडित हो उठी । आसपास का वातावरण विक्षुब्ध हो उठा । रह-रह कर मेघ-गर्जन होने लगा । समुद्री वायु के प्रबल झौंके वृक्षों से टकराने लगे और उन्हें धराशायी करने लगे । जब मेघ रुकता तो वायु चीत्कार करने लगता । लगता संकट के नगाड़े बज रहे हैं । नगाड़ों का घोर रव मानो दुर्ग और उसकी इनी-गिनी पड़ोसी झोंपड़ियों को सावधान कर रहा हो ।

मुगलों के यूथ का अधिकारी महलदारखाँ ऐसे ही किसी अवसर की बाट देख रहा था । किसी ऐसी ही घड़ी-पल में दुर्ग पर आधिपत्य करने का विचार कर रहा था । वह सोच रहा था, जीजाबाई और शिवाजी को बन्धन में लेकर अवश्य पुरस्कृत होगा । मुग़ल-सम्राट् शाहजहाँ उसके सुकृतों पर धन-सम्पत्ति न्यौछावर कर देगा । वह और उसकी सन्तान जागीरें भोगेंगी और उसकी सबसे बड़ी एक कल्पना यह भी थी कि यदि शिवाजी और जीजाबाई को बन्दी बना लिया तो शाहजी अवश्य आत्म-समर्पण कर देगा । फिर तो उसकी और उसके स्वामी की मुरादें पूरी हो जायेंगी । शाही दरबार में जश्न मनाये जायेंगे ।

और एक घनघोर मूसलाधार वर्षा में जब संध्या अधिक काली हो गई थी, कुछ मुग़ल-सैनिकों ने दुर्ग पर आक्रमण कर दिया । जीजाबाई काँप गईं । शिवाजी—माँ की स्थिति देखकर सन्न रह गया । एक छोटी कटार बाल—शिवाजी की कमर में सदैव बँधी रहती थी । शिवाजी उसे निकाल कर बोले, "माँ, डरो मत शत्रु को इस कटार से ही मार भगाऊँगा ।

बाल शिवाजी की तेजस्वी वाणी सुनकर माँ का हृदय गद्‌गद हो उठा । माँ ने बेटे को अपने वक्ष से सटा लिया । सम्भवतः जीजाबाई को माँ-बेटे का यह अन्तिम मिलन लगा । वीर नारी ने क्षत्राणियों की अनेक कहानियाँ सुनी थीं । माँ ने संकल्प किया, वह पुत्र की रक्षा करेगी,

अवश्य करेगी। सिंहनी भी तो अपने शिशु को आक्रमणकारी के सम्मुख समर्पित नहीं करती। वह आक्रोश में भर कर आततार्ई पर आक्रमण करती है, प्राणपन से अपने शिशु की रक्षा करती है, फिर चाहे उसे अपनी प्राणाहुति ही क्यों न देनी पड़े ! और जीजाबाई ने मन ही मन संकल्प कर लिया, चाहे वह रहे या न रहे, मरें या जिये अपने बालक की रक्षा में कोर-कसर नहीं छोड़ेगी। वे उठीं और दुर्ग में-से बाहर झाँक कर देखा कि मुग़ल-सैनिक दुर्ग की ओर निरन्तर बढ़ रहे हैं। उनकी संख्या गिनने जैसी नहीं रही थी। चारोंओर कुहासा, अँधेरा बढ़ रहा था। जीजाबाई ने दुर्ग का पिछवाड़ा देखा, उसका गुप्त मार्ग देखा। वहाँ अनेक झुरमुटों की पंक्तियाँ थीं। यह दृश्य जीजाबाई कई बार देख चुकी थीं। वह कई बार सोच भी चुकी थीं कि संकट के समय इस मार्ग का आश्रय लिया जा सकता है।…और अब वह घड़ी, वह क्षण, वह पल आ चुका है। जीजाबाई ने सम्बोधन के स्वर में कहा—

"बहादुरजी, संकट का सामना करने की सामर्थ्य अब हम में नहीं है। माँ-दुर्गा ही शिवाजी की रक्षा करें तो करें !"

बहादुरजी असमञ्जस में था, जानता था, मुग़लों के सैनिक अब हमें या तो बन्दी बना लेंगे या मार डालेंगे। उन्हें समझने में देर न लगी कि संघर्ष का अर्थ था मृत्यु और समर्पण का अर्थ था, बन्दी-जीवन। निर्णय लिया बन्दी-जीवन भोगना ही उचित रहेगा, उन्होंने सोचा जीजाबाई और शिवाजी के बन्दी होने का समाचार सुनकर शाहजी अवश्य सहायता को आएँगे। सम्भव है, इस प्रकार पति-पत्नि का मेल भी हो जाय। शाहजी की समर्थ शक्ति का डंका बहादुरजी सुन चुके थे। बहादुरजी ने परामर्श दिया–'क्यों न हम सभी आत्म-समर्पण कर दें ?' किन्तु माँ जीजाबाई शिवाजी के कारण संकट मोल लेना नहीं चाहती थी। उन्हें स्मरण हो आया पन्ना धाय ने उदयसिंह की कैसे रक्षा की थी ?

जीजाबाई ने बहादुरजी से कहा—"बहादुरजी, शिवाजी को लेकर पीछे वाले द्वार से निकल जाओ। यह आँधी और वर्षा वरदान बनकर आये हैं। प्रकृति हमारी सहायक हुई है। जंगल में छिपने के लिये बहुत-सी कन्दरायें हैं।"

बहादुरजी सकते में पड़ गये किन्तु उन्हें शिवाजी की रक्षा अनिवार्य लगी मुग़लों की कृपाणें और मराठों का रक्त ! वे जानते थे मराठों की कृपाणें और मुग़ल सैनिकों के सिर—एक दूसरे के प्राणघातक बने हुए हैं।

"किन्तु बहिन तुम ?" बहादुरजी ने गद्‌गद होकर कहा !

"मेरी चिन्ता न करो भैया बहादुरजी। शिवाजी की रक्षा हो गई तो सर्वस्व पा लिया। मुग़ल-नायक को मैं कुछ समय तक उलझाये रहूँगी और तुम दूर निकल जाओगे ! समय कम है, सोचने-विचारने में एक क्षण भी मत बिगाड़ो ! जाओ !"

और माँ ने पुत्र को आशीर्वाद दिया—"माँ–दुर्गा तुम्हारी रक्षक हों।"

"बहादुरजी ने शिवाजी को लिया तो शिवाजी विचलित हो गये। माँ को संकट में कैसे छोड़ दें !माँ और बहादुरजी का सम्भाषण शिवाजी ने ध्यानपूर्वक, बड़े मनोयोग से सुना था। वे माँ को ऐसी विषम परिस्थिति में छोड़कर जाना नहीं चाहते थे। किन्तु जब माँ ने उन्हें समझाया कि देश और धर्म की रक्षा के लिये उनकी आवश्यकता है तो शिवाजी विवश हो गये। बहादुरजी और शिवाजी दुर्ग के पिछले द्वार से निकल गये। मूसलाधार वर्षा हो रही थी। पहाड़ों की पतली-सँकरी पगडंडियों पर दोनों बढ़ते जा रहे थे। झुरमुट और झाड़ियाँ काँप रही थीं। झाड़ियों में कही सर्प-फुंकार रहे थे तो कभी तेन्दुओं की गुर्राहट सुनाई दे जाती थी। बहादुरजी शिवाजी को लेकर नीचे बढ़ रहे थे। नाले बह रहे थे। उनकी कर्कश ध्वनि कानों

के पर्दे फाड़े दे रही थी। होते–होते शिवाजी और बहादुरजी एक ऐसी संकीण घाटी में आ गये जहाँ वायु का लेश भी नहीं था। दम-घोट वायु-मण्डल। विश्रृंखल भूल-भुलैयों वाला बीहड़-प्रदेश। पथिक मार्ग भटक जाय तो न जाने कहाँ पहुँच जाय !

अब मेघ-वर्षण रुक गया था। मार्ग में स्थल-स्थल पर पक्षी और सर्प मरे पड़े थे। उनमें से कुछ साँसें भी ले रहे थे। इसी समय एक भीषण फूत्कार सुनाई दी। शिवाजी और बहादुरजी सहम गये। एक सर्प था, मणि उसके सामने रखी हुई चमक रही थी। दोनों पीछे हट गये। सर्प ने न जाने क्या सोचा, वह मणि को छोड़कर एक ओर चला गया और अदृश्य हो गया। मणि को शिवाजी ने उठा लिया। मानो शिवाजी को भेंट देने के लिये ही सर्प उपस्थित हुआ था। इसी भाँति दुर्गम पथ, निर्जन-प्रदेश में दोनों भटकते रहे—चलते रहे।

शिवाजी और बहादुरजी तो निकल गये, अब चिन्ता थी कि मुग़ल-सैनिकों से दुर्ग की रक्षा कैसे की जाय ? क्या रक्षा हो सकेगी, इस जीर्ण-शीर्ण दुर्ग की ? जिसकी दीवारें स्वयं वर्षा और झंझा के वेग से खण्ड-खण्ड हो रही थीं। मुग़ल-सेनापति महलदारखाँ का सपना साकार हुआ। जीजाबाई ने समर्पण करना अभीष्ट समझा, उन्होंने सामान्य संघर्ष लिया और स्वयं उसके घेरे में आ गईं। सेनापति ने पहले तो खड्ग-शक्ति का आश्रय लिया कि शिवाजी का पता बता दें किन्तु जब पता लगना कठिन लगा तो उसने धमकी दी। किन्तु निरर्थक ! दुर्ग के अन्य निवासियों तक को शिवाजी का पता नहीं था, वे तो इतना भर जान चुके थे कि दुर्ग में इस समय बहादुरजी और शिवाजी नहीं है तथा कुछ अन्य सैनिकों का भी पता नहीं चल रहा था। नायक की प्रताड़ना का आतंक भी दुर्ग-निवासियों का मुँह नहीं खोल सका। सब ने एक ही बात कही, शिवाजी को शाहजी के लोग ले गये हैं। उनका अपना पीछा छुड़ाने की दृष्टि से यह कहना ठीक भी था।

मुग़ल-सेनापति का हृदय उदार था, उसने किसी को अधिक प्रताड़ित नहीं किया। वह तो जीजाबाई को बन्दी बनाकर जैसे फूल गया। उसकी बाँछें खिल उठीं। वह तो सपना देख रहा था कि उसके आका उसे पुरस्कृत करेंगे तब वह एक बड़ी जागीर का स्वामी बन जायगा। वह यह भी कल्पना कर रहा था कि माँ को बेटा प्यारा होता है, कुछ समय बाद माँ, उसे अपने पास अवश्य मँगा लेगी। फिर भी वह शिवाजी को बन्दी बनाने की चेष्टा में लग जाना चाहता था। उसने अपने सहयोगियों को आदेश दिया कि एक-एक पहाड़ी का चप्पा-चप्पा ढूँढ़ा जाय। जीजाबाई चिन्तित हो उठीं। अँधेरा बढ़ आया था, अनेक मशालें जल उठीं। प्रकाश-दण्ड लिये सैनिक पहाड़ियों पर चढ़-उतर रहे थे, उनके दूसरे हाथों में खुले खड्ग थे। किसी-किसी के पास लम्बे-लम्बे बल्लम भी थे जिनसे वे झाड़ियों को सँभालते थे किन्तु उनके भाले रक्त में भीगे बिना ही निकलते तो उन्हें बड़ी निराशा होती। कुछ समय तक यही क्रम चलता रहा और जब सैनिक आकर अपनी असफलता का रोना रोते तो जीजाबाई तथा दूसरे लोगों को तो संतोष होता किन्तु महलदारखाँ निराशा में गोते खाने लगता। निदान ढूँढ़-खोज समाप्त हुई। दुर्ग की अन्य सेविकाओं के साथ भी मुग़ल-सैनिकों का दुर्व्यव्यहार नहीं हुआ। सबकी सब बन्दिनी बनाली गईं और एक कमरे में बन्द कर दी गईं। उनकी रात्रि वहीं व्यतीत हुई।

सवेरा हुआ। रात्रि की वर्षा के कारण नाले अब भी बह रहे थे। जीजाबाई एक पालकी में सवार करादी गईं। नंगी तलवारें और भाले उस पालकी को घेरे हुए थे। सेविकाओं की कमर में दृढ़ रस्सियाँ लपेट दी गई थीं कि वे भाग न जायँ—वे पैदल चल रही थीं।

सेनापति ने आदेश दिया, "पहाड़ी से नीचे उतरा जाय। प्रमुख शिविर पहुँचना है।"

आदेश का पालन यथावत होने लगा।

उस समय मुग़लों ने अपना प्रधान शिविर त्र्यम्बकगढ़ में बना रखा था। त्र्यंबक हिन्दुओं का तीर्थ ! नगर के ऊपरी भाग में काली चट्टानों में गोदावरी का उद्‌गम स्थल ! हजारों भक्त यहाँ आते और देव-मन्दिर में बैठकर अपनी श्रद्धा के पुष्प चढ़ाते। त्र्यम्बकगढ़ की ओर जब जीजाबाई की पालकी ले जायी जा रही थी, तब अन्य-सेविकायें अश्वों की पीठ पर कसदी गईं। सैनिकों ने अपने-अपने अश्व पहाड़ी के नीचे ही, दुर्ग पर आक्रमण करते समय छोड़ दिये थे। एक-एक अश्व की सुरक्षा के लिये दो-दो सैनिक नियुक्त थे। अब जीजाबाई की पालकी को अनेक सैनिक अश्वारोही घेरे चल रहे थे। पालकी पर दोनों ओर पर्दे थे और उन पर जाली का काम था। भीतर से बाहर की प्रत्येक वस्तु सरलता से देखी जा सकती थी। जब जीजाबाई की पालकी नगर के प्रवेश द्वार में प्रविष्ट हुई तो उन्हें सर्वत्र खण्डहर ही खण्डहर दृष्टिगोचर हुए। पथ-निर्जन था, वे आशा-निराशा के अतल समुद्र में खो रही थीं, डूब रही थीं, उतरा रही थीं। यदि जीजाबाई को चिन्ता थी तो केवल इतनी ही कि कहीं शिवाजी शत्रु के हाथ न पड़ जायँ।

किन्तु 'जाको राखे साइयाँ मारि सकै नहिं कोय !' शिवाजी के सम्बन्ध में फलितार्थ हो रही थी। दुर्ग के कुछ पुरुष-रक्षक जो दुर्ग से निरापद निकलने में समर्थ हो गये थे, बहादुरजी और शिवाजी के साथ मिल चुके थे। स्वामिभक्त बहादुरजी तथा दूसरे भौंसले और यादव निरन्तर तीन वर्ष तक एक कन्दरा से दूसरी कन्दरा में, एक पहाड़ी से दूसरी और तीसरी पहाड़ी में लिये घूमते रहे। कभी उन्हें अन्न के संकट का सामना करना पड़ता तो कभी वन के हिंसक जीवों से संघर्ष द्वन्द्व लेना पड़ता। शिवाजी संघर्ष और द्वन्द्व की भूमि पर बढ़ रहे थे। जिस प्रदेश में वे सुरक्षा ढूँढ रहे थे उसका प्राकृतिक दर्शन कठोर था। सर्वत्र कठोर भूमि ऊँची-नीची, नदी-नाले दिखाई देते थे। ऊँची-नीची धरती पर कहीं-कहीं घुटनों तक खड़ी सरपत में वे चलते, उनके

पैर लहू-लुहान हो जाते । कभी कोई उस भूमि पर फिसल पड़ता । कभी उन्हें सूखी झाड़ियों का सामना करना होता, कभी जल का कष्ट भोगना पड़ता । फिर साधन जुटाते, संकट झेलते किन्तु शिवाजी के संरक्षक निराशा को पास नहीं फटकने देते थे । इस अज्ञात, निर्वासित से जीवन पर शिवाजी को दुःख होता था, उन्होंने पिताजी के वैभवशाली जीवन के बारे में सुन ही रखा था, जब उनकी कल्पना मानस-समुद्र में हिलोरें लेती तो वे सिहर उठते । क्यों पिता ने मलेच्छों का वैभव बढ़ाया ? क्यों माता जीजाबाई की चिन्ता नहीं की ? क्यों नहीं अपने पुत्र को सँवारा ? प्रश्नों का अम्बार वे ढो रहे थे ।

शिवाजी को बनजातियों के कई स्थल ऐसे भी मिले जहाँ हिन्दू और मुसलमान साथ-साथ रहते थे । उन जनजातियों पर किसी सुल्तान अथवा मुग़ल-सम्राट् का आधिपत्य नहीं था । वे निरंकुश जातियाँ थीं । उनके जीवन में स्वच्छंदता थी । शिवाजी का मन उन अविजित जन-जातियों के जीवन को देख-देखकर स्वतन्त्रता का उपासक बनता जा रहा था । वे सोचते थे कभी मेरा अश्व और तलवार भी समर्थ होंगे । आज जो वनवासियों का-सा जीवन भोगना पड़ रहा है कभी तो इससे मुक्त होऊँगा । माँ को बन्दीगृह से छुड़ाऊँगा । पिता को उपालम्भ दूँगा, क्यों भोग, वैभव के लिये अपना खड्ग बेच रहे हो ? क्यों मलेच्छों की अधीनता स्वीकार की है ? क्यों मलेच्छों के शासन में प्रजा सताई जा रही है ? क्यों बच्चे और नारियों पर सैनिक बर्बरता का व्ययवहार करते हैं ? वे क्यों नहीं रोकते उस बर्बरता को ? शिवाजी का मन झकझोर उठता, यदि पिता में शक्ति है, उन्होंने अनेक राज्यों को पददलित कर उन्हें बीजापुर के शाही झण्डे के नीचे किया है और यदि उनमें शक्ति है तो क्यों नहीं मुग़लों से अपनी राज-लक्ष्मी की रक्षा करते ?

अनेक प्रश्न ! अनेक समस्याएं ।

अब शिवाजी दस वर्ष के हो चुके थे ? माँ की स्मृति उन्हें निरन्तर सताती रहती थी। जब-जब उन्हें माँ का ध्यान आता तो वे सिहर उठते ! माँ को बन्दनी-जीवन से कब मुक्ति मिलेगी ? कैसे मिलेगी ! यदि उनका वश चलता तो वे खड्ग खींच लेते और मुग़लशिविर पर आक्रमण कर माँ की जंजीरें काट देते, किन्तु अभी वे किसी शक्ति से टकराने की क्षमता नहीं बना पाये थे। माँ जिसने जन्म दिया दुःखी है, विचारते तो अश्रुधारा बह निकलती और फिर वे सन्तोष कर लेते, जब सुनते, एक माँ नहीं, अनेक माताएँ बन्दिनी हैं और सबसे प्रमुख यह कि जन्मभूमि, मातृभूमि बन्दिनी है। मातृभूसि को भी तो बन्धन-मुक्त कराना है। यदि मातृभूमि बन्धन में, दासता की शृङ्खला में आबद्ध रही तो किस की माँ मुक्ति की श्वास ले सकेगी ? किसकी प्रतिष्ठा आँच से नहीं झुलसती रहेगी ! माँ और मातृभूमि ! ये दो शब्द उन्हें निरन्तर झकझोर रहे थे।

और एक रात्रि—अन्धकारमय रात्रि में जीजाबाई उसी कन्दरा में प्रविष्ट हो गईं, जहाँ शिवाजी सो रहे थे। पास एक दीपक टिम-टिमा रहा था। बहादुरजी और कुछ साथी प्रहरी बने बैठे थे। कन्दरा में कुछ लोग सो रहे थे क्योंकि कल उन्हें प्रहरीरूप में अपना कर्तव्य निभाना है। यह देख मातृ-हृदय गद्गद् हो गया। बहादुरजी ने जीजाबाई के पैर छुए और शिवाजी को जगाया। शिवाजी ने माता का चरण-स्पर्श किया तो उसने सावेश अपनी बाहुओं में भर लिया। माँ ने पुत्र और पुत्र ने माँ को पा लिया बहादुरजी के गुप्तचर सफल हुए थे। एक मुग़ल पहरुए को कुछ दे दिला कर उनके सहयोगी जीजाबाई को मुक्त करा लाये थे। अब बहादुरजी का सपना सफल हो गया था। जीजाबाई की मुक्ति में उनके चाचा का प्रमुख हाथ था। धन की व्यवस्था उन्होंने ही की थी।

अब दिल्ली साम्राज्य और बीजापुर का संघर्ष ठण्डा पड़ गया था। शाहजहाँ अब संघर्षों का राही न रहकर नृत्य-संगीत का ग्राहक बन गया

था। निर्माण का उसका पथ बढ़ रहा था, विध्वंस से वह विमुख हो चुका था। शाहजहाँ और बीजापुर के सम्बन्धों में भी अब मधुरता आ गई थी। मुगल-सम्राट् के मंत्रिगण बीजापुर के सुल्तान को यद्यपि सुल्तान सम्बोधित नहीं करते थे, नवाब अथवा खाँसाहब कहते थे किन्तु राजकीय पत्राचार में उनकी विरुदावलियों को बढ़ाचढ़ा कर लिखते थे। शहाजहाँ की ओर से बीजापुर के सुल्तान के पास जो पत्र भेजे जाते उनमें सम्बोधन होता, 'भव्यता के आगार !', 'महाप्रतापी', 'पवित्रता के प्रतीक' आदि-आदि। इतना ही नहीं एक बार एक पत्र में तो सुल्तान को 'राज्याकाश के सूर्य' से अलंकृत किया गया था, सुल्तान उन्हें पढ़-पढ़ कर उपकृत हो उठता था। इसका कारण था बीजापुर और दिल्ली में संधि हो चुकी थी। सुल्तान ने शाहजहाँ का आधिपत्य स्वीकार कर लिया था। किन्तु शिवाजी के पितामह की जागीर अक्षुण्ण थी, वह मुग़ल-साम्राज्य और बीजापुर की सीमा-रेखा के मध्य में थी।

शाहजी ने अनेक दाक्षिणात्य राज्यों को पददलित कर सुल्तान के अधीन कर दिया था। उसका सर्वस्व गौरवपूर्ण-सूर्य से स्पर्द्धा कर रहा था। शाहजी दक्षिण में और शाहजहाँ उत्तर में अपना कीर्तिमान स्थापित कर चुके थे। यह सब जीजाबाई और शिवाजी तथा अन्य राजनायिक दृष्टियों से छिपा नहीं था। दिल्ली और बीजापुर में हुई सन्धि से शाहजी का जैसे स्वप्न-भंग हो गया। शाहजी ने हिन्दू राज्यों को बीजापुर के अधीन क्यों किया ? उत्तर था कि शाहजी छोटे-छोटे राज्यों के पक्ष में नहीं थे उनकी मान्यता थी कि छोटे राज्यों में सदैव अराजकता की स्थिति बनी रहती है। शाहजी का स्वप्न था एक दिन उनकी शक्ति इतनी सुदृढ़ और विशाल हो जायगी कि वे उन समस्त सीमाओं को अपने राज्य में—मराठा राज्य में मिला लेंगे किन्तु भाग्य का खेल ! उनकी योजना स्वप्नवत् ही रह गई।

जब युद्धों से शाहजी को मुक्ति मिली तो उन्हें शिवाजी और जीजाबाई की सुध आई। अनेक समर्थ सैनिक जीजाबाई को सम्मान-पूर्वक बीजापुर लिवा लाये। शिवाजी जब अश्व की पीठ पर आरूढ़ होकर अपने निवास-स्थली से नगर को देखते चले तो उनकी आत्मा कराह उठी, सर्वत्र विनाश-लीला का ताण्डव दिखाई पड़ रहा था। युद्ध ध्वस्त प्रदेश, भस्मसात हुए ग्राम—समस्त मार्ग में ग्राम के ग्राम जन-विहीन वीरान पड़े थे। स्थान-स्थान पर भवनों, मन्दिरों के ढेर दीख पड़ रहे थे—सभी खण्डहर बन चुके थे। कोसों तक घास और सरपत ही दिखाई पड़ रही थी। विषादपूर्ण मनःस्थिति में माँ और पुत्र बीजापुर के राज-पथ की ओर बढ़े चले जा रहे थे।

छह

जीजाबाई और शिवाजी के आगमन से तुकाबाई को ईर्ष्या नहीं हुई। जब तक वे वहाँ रहे उनकी सेवा-सुश्रूषा का पूरा-पूरा ध्यान रखा गया। जीजाबाई के कष्टमय दिन तुकाबाई को स्मरण हो आते थे तो वे दुःखी हो उठती थीं उनका बन्दी-जीवन वे भूली नहीं थीं। किन्तु शाहजी की जीजाबाई के प्रति अब इतनी अनुरक्ति नहीं थी। जीजाबाई से वे वर्षों तक दूर रहे थे और तुकाबाई का सान्निध्य उनके प्रति अनुकूल वातावरण बनाये हुए था, यद्यपि तुकाबाई सामान्य कुल मोहिते वंश की कन्या थीं, धन-वैभव उनके पितृकुल में इतना नहीं था जितना कि जीजाबाई के पितृकुल में था। अब उनका रहन-सहन प्रभावशाली था और यह महत्त्व की उन्हें बीजापुर के एक महान् योद्धा के यहाँ आकर ही मिला था। शाहजी के पास सम्पत्ति की कमी नहीं थी। कुछ दिन पश्चात् ही शिवाजी और जीजाबाई के निवास की व्यवस्था एक प्रथक् भवन में करदी गई। माता और पुत्र दोनों को यह व्यवस्था अधिक रुचिकर लगी। शिवाजी के प्रति जीजाबाई अधिकाधिक सजग रहती थीं। बीजापुर का शासक आदिलशाह हिन्दुओं के दमनार्थ अनेक नियमन प्रसारित करता रहता था।

जीजाबाई को बीजापुर सुल्तान का यह दम्भ हिन्दू और मुसलमान दोनों के पारस्परिक हितों के लिये घातक लगा। दमन की चक्की में कोई भी वर्ग क्यों न हो, पीसा जायगा तो देश में शान्ति कैसे रह सकेगी ? वे भली-भाँति जानती थीं कि शान्ति के अभाव में देश का विकास अवरुद्ध हो जाता है। जनमानस के पीड़ित होने पर उसकी भावनाएँ देश और राष्ट्र-विरोधी बन जाती हैं।

एक दिन सुप्रभात में शिवाजी बहादुरजी के साथ नगर-भ्रमण के लिये निकले। एक सजी हुई पालकी की व्यवस्था हुई। पालकी खुली हुई थी। उसके मध्य में एक स्वर्ण-छत्र झूल रहा था। जो शाहजी के वैभव का प्रतीक था। पालकीवाहकों की भी वेशभूषा अत्यन्त आकर्षक थी। शिवाजी की पालकी बीजापुर के विशाल उत्तरी प्रवेश-द्वार से नगर में प्रविष्ट हुई। उन्होंने देखा, द्वार पर एक शिलालेख लगा हुआ है। बहादुरजी ने उसे पढ़ा—"उस सुल्तान ने जिसकी आज्ञा सात प्रदेशों में प्रचलित है, इस प्राचीर का निर्माण कराया।"

शिवाजी बहादुरजी की वाणी से यह वाक्य सुनकर चौंक पड़े। उन्होंने अनुभव किया सुल्तान का दर्प अंकित किया गया है। शिवाजी ने अपने संरक्षक मामा बहादुरजी से कहा—"कितनी बड़ी दर्पोक्ति है मामाजी।"

बहादुरजी ने फिर एक स्थल का उद्धरण पढ़ा—"ये विशाल प्राचीरें, बीजापुर की रक्षा करती हैं।"...और देखिये शिवाजी, वे विशाल तोपें।"

बहादुरजी की दृष्टि अब तोपों पर थी। बहादुरजी एक-दो बार पहले भी बीजापुर आ चुके थे और भ्रमण कर गये थे।

शिवाजी की दृष्टि उन विशाल तोपों पर गई। साथ ही मुख से

आदेश का स्वर निकला, "ठहरो !"

शिविका वाहक रुक गये। शिवाजी पालकी में से कूद पड़े और उस ओर बढ़ चले। पालकी पृथ्वी पर रखी जा चुकी थी। बहादुरजी उतरे, उन्होंने भी शिवाजी का अनुकरण किया। कुछ मार्ग पर आने-जाने वाले नागरिक उनके समीप आ गये थे। शिवाजी की दृष्टि उन तोपों पर गढ़ चुकी थी। बहादुरजी भी समीप आ चुके थे। एक लम्बा तड़ंगा अबीसीनियायी सैनिक भाला हाथ में लिये, उसकी रक्षा में नियुक्त था। शिवाजी ने तोपों के सम्बन्ध में जानकारी चाही तोप स्वर्णवस्त्र से ढकी हुई थी। अबीसीनियायी सैनिक ने उस वस्त्र को हटाया। लोभ उसकी आँखों में झलक आया था। वह प्रायः श्रीमन्त दर्शकों से पुरस्कार-भेंट पा लेता था, यह क्षण भी उसे ऐसा ही प्रतीत हुआ। उस सैनिक ने सदर्प कहा—

"इस नगर की प्रसिद्धि इन विशाल तोपों के कारण ही है।" उसने न बहादुरजी को पहचाना था और न शिवाजी को।

"विशाल भयानक तोपें, बनावट में विलक्षण ! शिवाजी ने निश्चितता का स्वर दिया। "इन पर छत्र तने हुए हैं।" विस्मय जागृत हो उठा।

"बहुमूल्य प्रस्तरों से अलंकृत ये तोपें पूजी जाती हैं।" उस सैनिक ने आगे बतलाया। "सूर्य-ताप से इन्हें रक्षित किया जाता है। जब सैन्य दल इस मार्ग से निकलता है तो वह इनका अभिनन्दन करता है। और वह देखिये सब से बड़ी भीमकाय तोप" उस सैनिक ने एक बड़ी तोप की ओर संकेत किया।

"इस पर क्या लिखा है ?" शिवाजी बीच में ही बोल पड़े।

बहादुरजी ने पढ़ा इस पर अंकित है, "मालिके के मैदान !"

यह तोप बहुत प्रसिद्ध है। इसकी ख्याति मुग़ल दरबार तक में है। सुदूर तक इसकी मार के गीत गाये जाते हैं। इसका निर्माण सुल्तान मुरादखाँ ने करवाया था।...और यह देखिये इस पर लिखा है—ऐ खुदा के बन्दे, क्या तूने मुझे चलाकर देखा है? और यह उसकी दूसरी ओर अंकित किया गया है—'मैंने इस सुल्तान को वश में कर लिया है।"

ये वाक्य उस अबीसीनियाई सैनिक को सुनते-सुनते स्मरण हो गये थे।

"अहंकार और चुनौती!" शिवाजी के स्वर बिखर गये। मार्ग दर्शकों ने जिज्ञासा और विस्मय से उनके मुख की ओर देखा। शिवाजी का स्वाभिमान बोल उठा। उन्होंने कहा—

"सिर अजगर की आकृति लिये हुए है।"

शिवाजी ने अपना दृढ़ हाथ तोप के मुख में डाल दिया था, उसके जबड़े खुले हुए थे, दाँत सुतीक्ष्ण थे। उन्होंने उसके कान पकड़ कर देखे, कानों में कर्णफूल पहनाने के लिये उनमें छिद्र थे।

अबीसीनियायी सैनिक ने विनम्रता के स्वर में कहा—

"हुजूर जब सुल्तान की सवारी साल में एक दिन, इधर से निकलती है तो वे भी आदर देते हैं इसको! अपनी पालकी में-से उतर कर इसके सामने झुकते हैं।"

"सुल्तान अपना भक्तिभाव प्रदर्शन करते हैं।" यह बात शिवाजी को अद्‌भुत नहीं लगी। "शस्त्र-पूजा वीरों का कर्म है।" कहते-कहते उनका हाथ उनकी कृपाण पर गया। स्वर्ण-मण्डित उसकी मूँठ शिवाजी की सुदृढ़ अंजलि में थी। अपने शस्त्रास्त्रों के प्रति उनमें निष्ठा जागृत हो आई थी। वे तीव्रता से मुड़े और पालकी की ओर बढ़ गये। बहादुरजी ने उनका अनुसरण किया। अबीसीनियायी सैनिक इन दर्शकों से भेंट दक्षिणा न पाकर जैसे खिन्न हो गया। उसकी आँखें निस्तेज हो गई।

उसके मुख से केवल इतना निकला—कहाँ-कहाँ से चले आते हैं !"

प्रायः दर्शक इस सैनिक को दक्षिणा के रूप में कुछ होने दे जाते थे।

कुछ अन्य दर्शकों ने भी ये शब्द सुने। शिवाजी और बहादुरजी अपनी पालकी में बैठ चुके थे। दर्शक पालकी की ओर देख रहे थे। पालकीवाहकों ने पालकी उठायी और आगे बढ़ चले। कुछ ही पग बढ़े होंगे कि उन्हें स्वर्णीय शिखर-गोल गुम्बद दृष्टि गोचर हुआ।

बहादुरजी ने कहा "गुम्बद आकर्षक है।"

शिवाजी तो जैसे किसी कल्पना-लोक में खो गये थे। उस पर उर्दू लिपि में अंकित शब्दों को बहादुरजी ने पढ़ा—"सुल्तान मुहम्मद का मकबरा जिसका अब स्वर्ग में वास है।"

पालकी रोक दी गई थी।

गोल गुम्बद की भित्तियाँ नीलोपल से आच्छादित थीं। बड़ा आकर्षक और भव्य लग रहा था वह। शिवाजी ने एक दृष्टि उस पर फैंकी किन्तु वह अधिक समय तक वहाँ स्थिर नहीं रह सकी। शिवाजी अनबोले बने हुए थे। पास ही इब्राहीम रोजा था, उसकी कमनीय मीनारों से रजत-निर्मित कन्दकारी जैसे असंख्य कलापूर्ण प्रस्तरबन्ध झूलते दृष्टि-गोचर होते थे। वायु उन्हें यदाकदा झंकृत कर जाता था। इस भवन के आसपास कुसुमित वाटिकाएँ थीं। हरित दूर्वा से छिपी धरती पर कहीं-कहीं बड़े-बड़े गुलाबों की झाड़ियाँ और उन पर विकसित, अर्द्ध विकसित कलियाँ और पुष्प मन को लोभित कर रहे थे। संगमरमर पाषाण की निर्मित नलिकाएँ, उच्छ्वास भरती हुई शीतल वायु छोड़ रहीं थीं। शीतल फुहारें आसपास के वृक्षों पर गिर रही थीं और वातावरण सुखद बनाये हुए थीं। उनका प्रवाह पालकी की ओर आया, शिवाजी जैसे तन्द्रा से जागे, मुख से निकला—"जले पर नमक !"

किन्तु शिवाजी जैसे अग्निताप से झुलस गये। एक गहन दीर्घ निःश्वास उनके भीतर से उठा और उस शीतल वातावरण में मिल गया। शिवाजी की दृष्टि अब क्षीर-स्फटिक पाषाण के बने सुल्तान और उनकी बेगमों के मजारों पर टिक गई थी। उनका मनःताप बढ़ने लगा था। पुरुष के मजारों पर लेखनियाँ तथा मसिपात्र अंकित थे, जो उनकी विद्वत्ता के प्रतीक माने जाते थे। शिवाजी ने एक स्त्री-मज़ार की ओर संकेत किया और बहादुरजी से पूछा—"इस पर क्या अंकित है ?"

"सुलेमान की मलिका, विल्क़ीस के समान रूपवती एवं गौरवान्वित, सदय और सुशील, शालीनता की मूर्त्ति। जब से इस संसार से विदा हुईं जन्नत में निवास कर रही हैं।" बहादुरजी ने गम्भीरता से पढ़ा।

"शिवाजी ने सुनकर धरती पर दृष्टि गढ़ा दी। वे बोले-सुल्तानों का दप, अहंकार सर्वत्र छाया हुआ है मामाजी !"

पालकी बढ़ चली सहसा शिवाजी की दृष्टि दूसरी ओर गई। उत्तरी द्वार पर बड़ी कुशलता से महीन काम किया हुआ संगमरमर का एक झरोखा था। पाषाण-शिल्पी मलिक संदल ने अहंकारभाव से उस पर टंकित किया था, "इस भवन को देखकर स्वर्ग आश्चर्य में डूबा हुआ है। इस उद्यान का सौन्दर्य जन्नत ने अपने बाग के लिये उधार लिया है। भवन का प्रत्येक स्तम्भ इस उद्यान के सनोवर के वृक्ष के समान मनोहर है। स्वर्ग के देवदूत पुकार कर कहते सुने गये हैं, कि यह दिल फ़रेब इमारत, मलिका ताज सुल्ताना के लिये यथार्थ स्मारक है।"

'घमण्ड की पराकाष्ठा।" शिवाजी ने कहा—

पालकी बढ़ रही थी और शिवाजी का मनःताप उग्र होता जा रहा था।

"और यह क्या है ?"

"स्मृति-चिह्न भवन !"

"स्मृति-चिह्न भवन ?" शिवाजी फुस-फुसाये।

बहादुरजी ने सव्यंग पढ़ा—

"पैगम्बर मुहम्मद के दो केशों को एक स्वर्ण-मंजूषा में रखने के लिये यह भव्य प्रासाद निर्मित किया गया है।" बहादुरजी ने बहुत पहले देखा था यह स्मृति भवन। उन्होंने बताया सुल्तान ने इटली से शिल्पियों को बुलवाया था। उनकी हस्तलाघवता का ही प्रतीक है, यह स्मृति-भवन ! आओ इसे देख लें।"

पालकी रुक गई।

अन्य मनस्क शिवाजी ही पहले उतरे और आगे बढ़े। बहादुरजी साथ-साथ चल रहे थे। जैसे ही उस भवन में प्रवेश किया, भवन की भित्तियों पर अनेक कला-कृतियाँ अंकित थीं। एक भित्तिचित्र में अंकित था, एक प्रीतिभोज में पुष्प-मुकुट धारण किये रूप-लावण्यमयी महिलाएँ बैठी हैं। वेनिस निर्मित काच के मनोहर पात्रों में से लेकर फल खा रही हैं। दासी वर्ग, उनके सम्मुख कुछ वीणावादन कर रही हैं, तो कुछ गायिकाएँ सारंगी की तानें खींच रही हैं। बहादुरजी ने एक दूसरे चित्र कीओर संकेत किया। शिवाजी ने गहन दृष्टि से उसे देखा। भित्ति पर यूरोपीय संभ्रान्त पुरुषों की आकृतियाँ चित्रित हैं, उनकी टोपी बड़ी बड़ी घेरे वाली हैं। पुष्पों के मुकुट पहने, मुक्ताओं के हार धारण किये, एक ओर वीनस की आकृति स्पष्ट थी। यह आकृति अलस मुद्रा में पीछे तकिये का आश्रय लिये हुए थी और नीलपंख और करधनी, जिस पर मणियाँ बनी हुई हैं, कमर में धारण किये हुए थीं। कंगन और मुक्ता-कुण्डलों से अलंकृत हैं ! कामदेव वीनस को दर्पण दिखा रहा है। मंगल एक हाथ में पंख-युक्त शिरत्राण लिए दूसरा हाथ रति के सम्मुख फैलाये कुछ माँग रहा है। एक उद्यान चित्र में वीनस ऐडोनिस के साथ मनोरंजनमग्न है। फारस का एक युवक संगीत-विशारद महिला-मण्डली के सम्मुख संगीत एवं काव्य मुखरित कर रहा है। किन्तु महिलाएँ, जिनमें कुछ पाश्चात्य हैं और कुछ भारतीय, उसके प्रति उदासीनता का भाव प्रदर्शित कर रही हैं। एक ही चित्र में यह सब चित्रित था। यह देखकर शिवाजी का

मन घृणा से भर गया। सुल्तान का यह दम्भपूर्ण वैभव उन्हें रुचिकर नहीं लगा। शिवाजी ने सादा जीवन व्यतीत किया था, उनकी माता ने उनमें धार्मिक प्रवृत्ति को भर दिया था। फिर यह सब उन्हें क्यों रुचिकर लगता? शिवाजी ने बहादुर जी से कहा—

"मामाजी चलो, दरबार पहुँचना है, वहाँ पितृश्री प्रतीक्षा में होंगे।" जल्दी-जल्दी दोनों बाहर आए, शिविकावाहक प्रतीक्षा में थे। शिवाजी और बहादुरजी विकृत मन उसमें बैठ गए। पालकी राजपथ पर बढ़ रही थी। सामने से कुछ दूसरी पालकियाँ आ रहीं थी। उनके सामने कुछ अश्वारोही चल रहे थे। पालकी में महिलाएँ थीं। कृष्ण आवरण उनके शरीर को ढके हुए थे। महिलाओं की उनमें से मात्र बड़ी-बड़ी आँखें दीख रही थीं। एक अश्वारोही सैनिक ने, जो सबसे आगे अकेला चल रहा था, शिवाजी के शिविकावाहकों को आदेश दिया कि वे मार्ग से हट जाँय। पालकी वाहक रुक गये, अश्वारोही ने अपने लम्बे भाले से पालकी को धक्का दे दिया। पालकी लड़-खड़ा गई। शिवाजी और बहादुरजी को उस उद्दण्ड अश्वारोही का व्यवहार अनुचित लगा। शिवाजी और बहादुरजी पालकी से बाहर सड़क पर कूद चुके थे। उन्होंने अपनी तलवारें खीच लीं। अश्वारोही नायक गुर्राया। उसने अपने साथियों को आदेश दिया—

"इन्हें बन्दी बनालो और दरबार में सुल्तान के सामने हाजिर करो।"

बहादुरजी को आशंकाओं ने घेर लिया। वे नहीं चाहते थे कि कोई अप्रिय घटना घटे। उन्होंने कुशलता से काम निकालना अभीष्ट समझा। वे स्वयं शिवाजी के आगे आ गये और उस गर्वीले नायक से विनम्र वाणी में कहा—

"नायक, अपना मार्ग लीजिये।"

नायक और उसके पीछे आने वाले सभी सैनिक रुक गये थे। पालकी में जो महिलायें बैठी थीं टुकुर-टुकुर शिवाजी और बहादुरजी

को ताकने-झाँकने लगीं । शिवाजी की किशोरावस्था उन्हें आकर्षक लगी । शिवाजी ने उनकी ओर तनिक भी नहीं देखा वे तो नायक को घूर रहे थे ।

नायक गुर्राया—"पहाड़ी ! मालूम होता है, शहर में पहली बार आए हैं ।" उसने अपना मुँह बिचकाया ।

अश्वारोही नायक का यह व्यवहार शिवाजी को कष्टप्रद लगा उन्होंने अपनी तलवार खींच ली, किन्तु बहादुरजी ने उन्हें शान्त किया। वे नायक से बोले—"नायक सामन्त शाहजीराजे के सुपुत्र हैं ।"

"उनके पुत्र तो सम्भाजी हैं, हमने उन्हें देखा है ।"

"उनसे बड़े हैं, जीजाबाई के पुत्र शिवाजी ।"

'ओह !' कहकर नायक ने अपने अश्व को एड़ लगाई । अन्य रुके हुए अश्वाराही भी चल पड़े ।

शिवाजी का अन्तर्मन कराह उठा । प्रस्तुत वातावरण उन्हें व्यथित करने लगा । बहादुरजी को सम्बोधित करते हुए उन्होंने कहा—

"मामाजी ! धन-वैभव से परिपूर्ण यह नगरी रावण-नगरी से भिन्न नहीं है । यहाँ का वातावरण मन को निरन्तर विक्षुब्ध किये जा रहा है । प्रतीत होता है हम यहाँ स्वतन्त्रता का श्वास भी नहीं ले सकेंगे ! हम यहाँ बन्दियों जैसा जीवन भोगने तो नहीं आए ।"

"शिवाजी शाहजीराजे का सम्मान है यहाँ । हमारा परिचय भी यहाँ के लोगों से हो जायगा ।"

बहादुरजी ने सांत्वना का मंत्र दिया ।

"परिचय ! अपना व्यक्तित्व खोकर परिचय बढ़ाना उचित नहीं, व्यक्तित्व की अद्वितीयता को मूल्यवान् समझना आवश्यक है, और अद्वितीय व्यक्तित्व के लिये, उसकी रक्षा के लिये मनुष्य को कष्ट उठाना पड़ता है । कष्टों का स्वागत ही हमें प्रिय है । इस ऐश्वर्यमय

जीवन को भोगने से अच्छा है हम अभावों का ही स्वागत करें। वही हमारे मानस को अलंकृत कर सकेंगे । जब हम अभावों की परिखा पार कर लेंगे तभी हम सफल होंगे ।"

इतना कहकर शिवाजी चुप हो गये । वे कुछ सोच में पड़ गये । थोड़ी देर पश्चात् वे फिर बोले—

"मुस्लिम-शासक का बीजापुर ! रावण की लंका में राक्षसों का प्राबल्य......।

शिवाजी इतना ही, उच्चारण कर पाये थे कि एक टोली राजमार्ग पर आती हुई दिखाई दी । उनका ध्यान उस को सहज ही चला गया । यह टोली एक भवन से निकली थी—आरामगृह से । इस टोली के लोग विदेशी थे । उनका वस्त्रालंकार अद्भुत् लग रहा था । वे कृत्रिम केश-युक्त टोपियाँ पहने हुए थे । चौड़े टोपों में पक्षियों के पंख टँगे हुए थे । उनके रेशमी वस्त्रों पर विचित्र-विचित्र पट्टियाँ लगी हुई थीं । उनके जूतों की एड़ियाँ ऊँची उठी हुई थीं । वे राज-पथ पर सगर्व चलने लगे, किसी रमणी ने एक दूकान की ओर संकेत किया और टोली के लोग उधर चल दिये । सम्भवतः कुछ क्रय करना चाहते थे। उस दूकान पर विलासिता के उपकरण बिकते थे, नामपट्ट से यह सहज ही पहचाना जा सकता था । शिवाजी की सधी हुई, तेजस्वी आँखें यह सब देख रही थीं, बीजापुर के नागरिक जीवन को देख रही थीं । उस ओर अत्तारों, रंग बेचने वाले और केश शृंगारगृह थे । एक अन्य दूकान पर कलात्मक पीतल के बर्तन दमक रहे थे । इसी बीच कुछ लोग और आये, उनकी दृष्टि के सामने । ये बीजापुरी ही थे । उनके परिधान इस बात के सूचक थे कि वे किसी सम्पन्न-समृद्ध परिवार के लोग हैं । कीमखाव की उनकी अचकनें थीं । कारबोची के काम के उनके कमर-पट्ट थे । पैरों में चर्म के अध कटे जूते पहने हुए थे । सिरों पर उनके साफे बँधे हुए थे, उन पर स्वर्ण का काम किया हुआ था। उनके अश्व

स्वस्थ थे। उन पर चढ़ी जीनें स्वर्ण-मिश्रित थीं। जीनें तुर्की, फारस अथवा अरब देश से मँगाई गईं थीं।

सहसा कुछ सैनिकों से घिरे बन्दी दिखाई दिये। अश्वारोही सैनिक उन बन्दियों को घसीट-से रहे थे उनकी कमर दृढ़ रज्जु-पाशों से बँधी हुई थीं। शिवाजी ने बहादुरजी से पूछा—

"मामाजी, क्या ये सब बन्दी हैं ?"

"हाँ, ये सबके सब मौत के घाट उतारे जायँगे।"

"मृत्यु से मिलने वालों का इतना बड़ा जुलूस ?......सम्भवतः हिन्दू हैं।"

शिवाजी कह गये......विस्मय उनकी आँखों से टपकने लगा।

"सबके सिर, अबीसीनियाई जल्लाद कुछ ही देर में धड़ से अलग कर देंगे।" बहादुरजी ने करुणा में भर कर कहा।

शिवाजी के मन में वितृष्णा भर गई। बीजापुर के सुल्तान के प्रति घृणा बढ़ने लगी।

शिवाजी को सुल्तान की परिषद् में आज ही जाना था। अब उनका मन नहीं चाहता था कि वे परिषद् में जायँ किन्तु शाहजी ने शिवाजी को नगर-भ्रमण जाने से पूर्व आदेश दे दिया था कि उन्हें परिषद्-भवन पहुँचना है। परिषद् में पहुँचने का समय भी मध्याह्न, से पूर्व बता दिया था और मध्यान की ओर ही सूर्य बढ़ रहा था। बहादुरजी ने शिवाजी से कहा--

"चलो, शीघ्रता करें अन्यथा परिषद् उठ जायेगी।"

शिवाजी ने नाक-भों सिकोड़ी। परिषद्-भवन पहुँचने की उनकी उत्कण्ठा अब क्षीण हो चली थी। उन्होंने बहादुरजी से अनमने भाव से कहा—

"मामाजी यदि न चला जाय तो ?"

"तो शाहजीराजे अप्रसन्न होंगे और सम्भवतः सुल्तान भी......।

"सुल्तान भी, सुल्तान की अप्रसन्नता की मुझे चिन्ता नहीं है, मामाजी। हाँ, पिताजी का आदेश पालन न करना, अवश्य उचित नहीं होगा।"

"तो चलें।"

बहादुरजी भी बीजापुर परिषद् देखने के लिये उत्कण्ठित थे। दोनों पालकी की ओर बढ़े-आरूढ़ हुए। पालकीवाहकों ने पालकी उठाई और वे द्रुतगति से परिषद्-भवन की ओर प्रस्थान करने लगे।

सात

शिवाजी अपने मामा बहादुरजी के साथ बीजापुर—परिषद् में पहुँचे। प्रवेश-द्वार पर ही शाहजी उनकी प्रतीक्षा कर रहे थे। शाहजी सदर्प भीतर बढ़े और उनके पीछे शिवाजी और बहादुरजी। राज-प्रासाद के विशाल द्वार से उन्होंने प्रवेश किया। आगे बढ़ने पर शिवाजी की चौकन्नी दृष्टि ने एक जल-मण्डप देखा, सरोवर की जल-लहरियाँ प्रशांत थीं। सरोवर के ऊपर एक विशाल मीनार था। उसकी शिल्प-कला चित्ताकर्षक थी। उसमें काष्ठ-निर्मित छज्जे थे। छज्जों का शिल्प अद्भुत दीख रहा था। उस मीनार में पाँच खिड़कियाँ थीं, जो प्रकाश फैंक रहीं थी। पद्म पंखुड़ियों की मनोरम आकृति का एक मुण्डेरा था। इसे काट-छाँटकर शिल्पियों ने आकर्षण रूप दिया था। बहादुरजी और शिवाजी उसे देखने वहाँ रुक गये। शाहजी ने उनको वहाँ रुकते देखा तो स्वयं भी ठहर गये। शिवाजी ने कहा, "पिताजी यह सरोवर और जल-मंडप बड़ा आकर्षक है।"

पिता ने पुत्र की जिज्ञासा शान्त की, "ग्रीष्म में यहाँ बैठ कर परिषद्-जन जल-विहार का आनन्द लेते हैं।……सुल्तान, उन्होंने एक स्थल की ओर संकेत किया, 'वहाँ बैठते हैं। उन नलिकाओं से जल-धारायें स्रवित होती रहती हैं। बड़ा आनन्द रहता है।"

"आनन्द !" शिवाजी बुदबुदाये। उनके अन्तरतम में सुल्तान के वैभव के प्रति विद्रोह समा चुका था।

शाह्जी ने आदेश के स्वर में शिवाजी से कहा—"चलो।"

"चलिये।"

......और तीनों आगे बढ़ गये। आगे बढ़े तो देखा, एक भित्ति पर बीजापुर के सुल्तानों के बड़े-बड़े चित्र टँगे थे। पूर्ववर्त्ती सुल्तान मुहम्मद के उन चित्रों में कई मुद्रायें चित्रित थीं। मुहम्मद सुल्तान अपनी प्रेयसी नर्त्तकी को समीप बिठाये गद्देदार शैया पर लेटा हुआ था। उसके पार्श्व में पुष्प-मंजूषा चित्रित थी। रंगों का वर्गीकरण स्पष्ट झलकता था। नर्तकी के एक हाथ में वीणा थी। और दूसरे हाथ में कोई पुस्तक थी। यह प्रतिकृति अधिक प्राणवान् थी। मृतक सुल्तान का चित्र था यह, किन्तु मुस्कराहट उसकी आकृति को अब भी सजीव बनाये हुए थी।

शिवाजी और बहादुरजी चित्र देखने में तल्लीन हो गये। शाहजी आगे बढ़ गये थे। शिवाजी बोले—"मामाजी विलासिता का नंगा-नृत्य है यहाँ तो !"

बहादुर जी ने एक दीर्घनिःश्वास छोड़ा। शाहजी आगे से पीछे फिरे अब तक बहादुरजी ने कोई उत्तर नहीं दिया और दोनों आगे बढ़ गये। शिवाजी का मन कचोट रहा था। उनके अन्तरतम में व्यथा थी और सुल्तानशाही के विरुद्ध घृणा बढ़ती जा रही थी। कुछ आगे बढ़े तो शिवाजी ने देखा सुल्तान दम्भ-पूर्ण मुद्रा में बैठा है। उसका एक पैर एक रेशमी गोलाकृति तकिये पर स्थिर है, दूसरा पैर नीचे की ओर मुड़ा हुआ है। सुल्तान एक हाथ में तलवार लिये हुए है, और दूसरे में स्वर्ण-कुन्जी ! वह तातार में बना लम्बा कोट पहने हुए है। उस पर स्वर्ण का काम झिलमिला रहा है। सिर पर बेलबूटेदार कढ़ा हुआ किरीट शोभित है। सुल्तान ने लम्बे जूते पहन रखे है, उन पर

फूल-पत्तियाँ तथा चित्राकृतियाँ कढ़ी हुई हैं । उनकी नोंकें ऊपर को उठी हुई हैं । जहाँ सुलतान बैठा हुआ था उस पर स्वर्ण का छत्र तना हुआ है । उसमें मोती की लड़ियाँ झूल रहीं थी । परिषद् में कुछ यवन-तुर्की युवतियों के हाथों में, स्वर्ण-दण्डों में बँधे, चँवर हैं, उन्हें वे निरन्तर एक मुद्रा में डुलाने में निरत हैं, लगता था वे इस कर्म में—अभ्यस्त हैं । सिंहासन के दोनों पार्श्वों में अर्द्धवस्त्र धारण किये दो किशोरियाँ जो तरुणाई की दिशा में अग्रसर हैं, उनके अंग-प्रत्यंग गौरवर्ण और सुगठित हैं पान की आकृति में बने हुए मयूर पंख—एक गति से, सुलतान के ऊपर डुला रहीं हैं । उनके नेत्रों में चंचलता है और कर-दण्ड मृणाल तन्तुओं से हैं । उनके गौरवर्ण भुज-दण्डों में स्वर्ण-कंकण हैं । मयूरपंख डुलाते समय जब वे उठते और गिरते हैं तो मदिर-ध्वनि होती है । वह मधुर ध्वनि सुलतान के कानों में पड़ती थी तो उसे रस मिलता था और जब सुलतान तन्द्रावश होता तो उनकी मदिर ध्वनि उसे सचेत कर देती थीं ।

शिवाजी ने अपनी सधी हुई दृष्टि से यह सब देखा । उन्होंने परिषद् का ठाठबाट प्रथम बार देखा था, एक दृष्टि उन्होंने मामा-बहादुरजी पर डाली । बहादुरजी की आँखों में लाल डोरे खिंच आए थे । शिवाजी की आँखों में तेज झलक रहा था । एक कास्यघण्ट पर ध्वनि हुई झन्नन्...और परिषद्-जन क्रमशः बढ़ने लगे । वे सुलतान को साष्टांग प्राणाम-अभिवादन कर अपने-अपने स्थान पर बैठते जाते थे । शाहजी के बैठने का स्थान बीजापुर के मंत्री-प्रमुख मुरार जगदेव के पश्चात् था, यहाँ कुछ अधिक व्यक्ति बैठ सकते थे । मुरार जगदेव के पश्चात् अभिवादन का वही अभिनय शाहजी ने किया । शिवाजी को यह नाँच अरुचिकर लग रहा था । जब शाहजी ने शिवाजी को आदेश दिया कि वे भी सुल्तान के प्रति अपनी भक्ति-भावना व्यक्त करें तो, उनका अन्तरमानस तिलमिला गया । पिता का आदेश पाकर वे बढ़े तो किन्तु सामान्य रूप से ही हाथ जोड़कर उन्होंने सुलतान को नमस्कार किया । केवल

'सलाम सुल्तान'–इतना ही उनके मुख से निकला। बहादुरजी ने कुछ अधिक झुककर अभिवादन किया।

मुस्लिम-वैभव के प्रति शिवाजी का मन निरन्तर तिरस्कार-भाव से आपूर्य होता चला जा रहा था लग रहा था, न जाने कब झलक पड़े किन्तु इस समय उन्होंने उसे छिपा लिया—

शिवाजी का ऐसा रूखा व्यवहार देखकर सुल्तान के तेवर चढ़ गये। परिषद्जनों ने समझा देहाती-जीवन के अभ्यस्त होने के कारण ही शाहजी के पुत्र ने ऐसा सामान्य पुरुषोचित अभिवादन किया है। शाहजी सुल्तान की मनोदशा ताड़ गये उन्होंने शिवाजी से कहा कि सुल्तान को उसी ढंग से अभिवादन करना चाहिये जैसा कि अन्य परिषद्जनों ने किया है, स्वयं मैंने किया है। उन्होंने कहा—'वैसा ही करो।'

'वैसा ही करो,' सुनकर शिवाजी की भृकुटी में बल पड़ गये। उनका हृदय वह अभिनय करने के लिये तैयार नहीं था। शाहजी बड़े असमंजस में पड़ गये! उन्होंने शिवाजी की अशिष्टता के प्रति सुल्तान से करबद्ध प्रार्थना करते हुए क्षमा-याचना की। उन्हें भय था, कहीं सुल्तान दण्ड-व्यवस्था की घोषणा न कर दे, और यदि एक बार सुल्तान ने व्यवस्था देदी तो शिवाजी को दण्ड भोगना ही पड़ेगा। यह भी सम्भव था उन्हें, स्वयं को भी दण्ड भोगना पड़े। इस भय का एक कारण यह भी था कि सुल्तान के चाटुकार अधिक थे और कुछ परिषद्जन शाहजी की कीर्ति-समृद्धि के प्रति भी ईर्ष्यालु रहने लगे थे।

सुल्तान ने शिवाजी का व्यवहार क्षमा तो कर दिया किन्तु साथ ही शाहजी को आदेश दिया कि वे अब जब कभी शिवाजी को परिषद् में लाएँ तो परिषद् के तौर-तरीके सिखा कर लायें। शाहजी ने इस आदेश को सिर-माथे स्वीकार किया।

अब मुस्लिम सैन्य अधिकारियों एवं मंत्रियों ने सुल्तान का अभिवादन किया। जब अभिवादन-क्रम समाप्त हुआ तो सुल्तान ने अपनी

भ्रकुटी एक नवयुवती दासी की ओर फैंकी । सेविका कास्य-घण्ट यंत्र के समीप खड़ी प्रतीक्षा कर रही थी, कास्य-घण्ट पर अपने मनोरम कटाक्ष और अभिनय से उस कास्य-पात्र पर एक काष्ठ की दण्डिका से आघात किया । दण्डिका का अग्रभाग बन्द कमल के तुल्य था उसके कास्यघण्ट पर पड़ते ही वह झनन्न् ध्वनि कर बैठा । ध्वनि से परिषद् कक्ष गूँज उठा । अनेक दाक्षिणात्य नृत्यबालाएँ एक ओर से क्षिप्रगति से, अभिनय मुद्रा में आ उपस्थित हुईं । वे साभिनय सुल्तान के सामने विनत हो गईं और मुजरा किया ।

कक्ष में घुँघरुओं की ध्वनियाँ फैल गईं । सुल्तान ने स्वर्ण-कुंजी वाला हाथ उठाकर उस मुजरे को स्वीकार किया । नृत्य आरम्भ हुआ, ठुमरी के बोल गूँजने लगे । सुल्तान प्रशंसासूचक शब्दों को पुनः पुनः दुहराता और उसके पश्चात् उसी क्रम में अन्य परिषद्जन । शिवाजी यह सब देख रहे थे । उनके मन में सुल्तान के प्रति घृणा भरती जा रही थी वह मुख पर झलक आई ।

नृत्य-गायन के पश्चात नर्तकियाँ अभिवादन-मुद्रा प्रदर्शित कर जाने लगीं तो जाते-जाते उन्होंने सुना, प्रत्येक को बीस-बीस होन दिये जाँय । कोषाध्यक्ष ने खड़े होकर तीन बार कोर्निस की और फिर अपने स्थान पर बैठ कर बही में उस आदेश को नौंध लेने का आदेश-अपने सहयोगी को दिया । ऐसा क्रम परिषद् वाले प्रति दिन रहता था ।

शिवाजी अपने पिता के समीप अन्यमनस्क बैठे तानाबाना बुन रहे थे । बहादुरजी उनके समीप चुपचाप बैठे थे । शिवाजी के मन में क्या है ?⋯सम्भवतः वे सोच रहे थे, एक दिन वे भी राजा बनेंगे, उनकी भी परिषद् होगी, उनके भी मंत्रिगण होंगे । किन्तु ऐसा कुछ न होगा, विलासिता का प्रदर्शन नहीं होगा । परिषद् में प्रजा के हित सम्बन्धी मंत्रणायें होंगीं । शिवाजी को स्मरण हो आया, उनकी माता सुख और सन्तोष की श्वास लेगी । माँ की स्मृति आते ही उनके मुख

पर उर्मियाँ जैसी रेखायें उभर आई। भीतर ही भीतर माँ—माँ कहा और वे उनकी स्मृति में खो गये।

सहसा सुल्तान की दृष्टि शिवाजी की ओर गई। उसे शिवाजी किसी उलझन में फँसे प्रतीत हुए। सुल्तान को उनकी मुखाकृति से लगा शिवाजी के मन में विद्रोह के अंकुर पनप रहे हैं। सुल्तान असमञ्जस की स्थिति में घिरता चला गया। उसने धारणा बनाई यह बालक अवश्य उद्दण्ड है।उसने शाहजी को सम्बोधित किया—

"शाहजीराजे आपका पुत्र बीजापुर में कब तक रहेगा ?"

शाहजी सुनकर सकते में पड़ गये। साहस बटोर कर उन्होंने सविनय उत्तर दिया—"बीजापुर देखकर ही चला जायगा।"

शिवाजी को सुल्तान और पिता दोनों का यह व्यवहार अरुचिकर लगा। उन्होंने उत्तर दिया—

"मैंने बीजापुर देख लिया है। मैं यहाँ से—शीघ्र चला जाऊँगा।"

सुल्तान को क्रोध आया। बीच में बोलना उसे पसन्द नहीं था। परिषद् की मर्यादा का ध्यान लेशमात्र भी नहीं जानता शिवाजी। उसने सावेश आदेश दिया—

"शाहजीराजे !"

शाहजी ने झुककर सुल्तान के शब्द झेल लिये। सविनय उन्होंने आदेश की प्रतीक्षा की। सुल्तान ने सरोष कहा—

"शाहजीराजे हमारा हुक्म है, आप अपने शेर को शीघ्र ही बीजापुर से बाहर करदो।"

"आज्ञा सुल्तान महाबली।" शाहजी ने सिर झुकाकर कहा।

सुल्तान की आँखों में लाल डोरे उभर आए। उसने सदर्प कहा—

"निश्चय ही शिवाजी उद्दण्ड है। परिषद् में कैसे बैठना चाहिये यह तक नहीं जानता ! सचमुच इस पर जंगली जातियों का प्रभाव है।"

सुल्तान का दर्प शिवाजी सहन न कर सके। वे सावेश खड़े हो गये और यह कहते हुए "मैं स्वयं चला जाता हूँ।" परिषद्-भवन से निकल गये। जाते समय उन्होंने पीछे मुड़कर देखा तक नहीं।

महत्त्वाकांक्षा का समुद्र उनके मानस में उद्वेजित हो रहा था। सुल्तान के प्रति रोष भर गया उनमें। प्रतिशोध की भावनायें अंकुरित हो रही थीं।

परिषद् का वातावरण विक्षुब्ध हो गया, शिवाजी की आलोचना प्रत्यालोचना होने लगी। शाहजी नतमस्तक थे, शिवाजी का व्यवहार उन्हें भी कचोट रहा था। सुल्तान ने कोई नवीन आदेश नहीं दिया, क्यों ? क्योंकि शाहजीराजे की शक्ति बीजापुर के लिये अनिवार्य थी।

सुल्तान उठ खड़े हुए और वे प्रमदा-कक्ष की ओर चल दिये।

परिषद् बिना कोई कार्य-सम्पादन किये, भंग हो गई !

आठ

जीजाबाई, बहादुरजी और शिवाजी पूना चले आए। बीजापुर में रहते हुए शाहजी का मन कचोटने लगा था। जब वैभव-सूर्य उन के सम्मुख हाथ बाँधे खड़ा था तो वे जीजाबाई और शिवाजी को सुखी नहीं कर पाये। विधि की विडम्बना ही थी कि जीजाबाई को पति-सुख से वंचित होना पड़ा। जीजाबाई ने अब अपनी समस्त आशायें शिवाजी पर केन्द्रित कर दीं। वे अपना सुख शिवाजी के कल्याण में ढूँढ़ रही थीं। शिवाजी समर्थ हों और मातृ-भूमि पर उसके निवासियों पर होने वाले अत्याचारों का अन्त हो, यही भावना उमड़ रही थी। अब जीजाबाई का अन्तःकरण पूर्वापेक्षा अपने अन्तरतम की ओर अधिकउन्मुख हो उठा। उनकी आध्यात्मिक भावनायें प्रबल होती चली गईं और वे उन भावनाओं को शिवाजी में भरने लगीं। अन्तःकरण का विलोड़न—अमृत शिवाजी को देने लगीं और शिवाजी उन्हें धरोहर समझकर उनका अक्षरशः पालन करने लगे। शिवाजी के लिये जीजाबाई—मातृ-मन्दिर किसी आध्यात्यदेवी का नया मंदिर बन गया।

शिवाजी को किसी की अधीनता में रहना प्रिय नहीं था, अधीनता से अरुचि ही थी। माता सदैव उनके समीप थीं, फलतः मातृ-प्रेम में

प्रगाढ़ता स्वाभाविक था। जीजाबाई अपने पितृकुल की वीरगाथायें तो शिवाजी को सुनाकर प्रेरित करती ही थीं, राणा संग्राम, प्रताप, बाप्पारावल के यशोगीत भी सुनाती रहती थीं।

शाहजीराजे ने, शिवाजी के पूना पहुँचने पर, दादाजी कोंडदेव को उनका संरक्षक-गुरू नियुक्त कर दिया। उन्हें पूना की समस्त कार्य-व्यवस्था का भार सौंप दिया। जागीर की व्यवस्था और शिवाजी का भविष्य निर्माण दादाजी कोंडदेव पर फिर आ गया। बाल्यावस्था में शिवाजी को मल्ल-युद्ध, तलवार, भाला आदि शस्त्रास्त्रों का प्रयोग तो सिखा ही चुके थे, अब उन्हें शिवाजी को राजनीति-पटुता में पारंगत करना था। उन्होंने शिवाजी को इसके सर्वथा योग्य और समर्थ पाया।

एक रात्रि दादाजी अपनी काष्ठ-शैया पर लेटे हुए थे, शिवाजी उनके पैरों की ओर एक आसन्दी पर बैठ गये। शिवाजी ने दादाजी कोंडदेव से अपने पूर्वजों की, पितामह और पिता की उपलब्ध जागीर के सम्बन्ध में चर्चा छेड़ दी। शिवाजी ने उस सीमान्त जागीर के भौगोलिक महत्त्व पर वार्तालाप आरम्भ किया। उन्होंने कहा—

"आचार्यवर, यदि दो सीमान्तों के मध्य कोई भूमि हो तो उसकी समृद्धि सरलता से हो सकती है।"

दादाजी शिवाजी की भावना ताड़ गये। शिवाजी ने जिस प्रयोजन से यह तर्क उपस्थित किया था, वह स्पष्ट था। मुग़ल और बीजापुर के सीमान्तों के मध्य शिवाजी के पूर्वजों की भूमि थी।

"यदि दोनों राज्य जीर्ण-शीर्ण हो रहे हों, उनके परस्पर संघर्ष अथवा विघटन की स्थिति बन गई हो तो मध्यस्थ भूमि की समृद्धि निःसन्देह हो सकती है।" दादाजी कोंडदेव ने यह भी तर्क दिया, "शिवाजी, यह भी अप्रत्याशित नहीं है, कि बड़े राज्य स्वतः ही विघटित होने लगें, जिसकी सम्भावना दो राज्यों के मध्य उन्नतिशील नवीन

शक्ति की किसी सुनिश्चित, सुनियोजित उत्कृष्टता के फलस्वरूप न्यून, उनकी पारस्परिक विध्वसांत्मक शत्रुता के कारण अधिक होती है।" शिवाजी की कल्पना को बल मिला। अपने पितामह को मिला भूखण्ड उनके क्रियाकलापों के लिये पर्याप्त था। विकास और समृद्धि से यह भूभाग वरदान सिद्ध हो सकता है, यह धारणा शिवाजी के मस्तिष्क में घर कर गई। बीजापुर के सुल्तान ने सोचा था कि यदि शिवाजी उस भूखण्ड में रहेंगे तो बीजापुर राज्य के लिये वरदान बन जायगा। निरन्तर यह भूभाग जनशून्य और उच्छिन्न होता चला जा रहा था। यहाँ की अधिकांश बस्तियाँ विलुप्त हो चुकी थीं। कृषि योग्य भूमि भी बंजर हो चली थी। उस भूखण्ड पर कृषिकर्मी भी नहीं बचे थे, वे बटमारी में लग गये थे। कृषकों ने हताश होकर लूटमार करना अपना लिया था। उस भूभाग को मुग़ल-सेना ने विध्वंस कर दिया था और दुर्भाग्य, प्रदेश में पिछले दिनों एक भयानक दुष्काल पड़ चुका था। जनजन भूख से त्राहि-त्राहिकर उठा। वहाँ की जन-संख्या निरन्तर काल के गाल में तिरोहित हो गई। यत्र-तत्र-सर्वत्र वन-पशुओं का आतंक छा गया। यूथ के यूथ भेड़िये यहाँ के बचे खुचे निवासियों पर आक्रमण करने लगे। कृषक भयातुर स्थिति में पड़ते चले गये।

दादाजी कोंडदेव ने भी इस भूमि पर दृष्टि डाली। "किसी समय यह मावल प्रदेश नितान्त कृषि-प्रदेश था। किन्तु उस भूखण्ड में कोई प्रमुख नगर नहीं था, अतः व्यापार नाम मात्र को भी नहीं था। यहाँ के निवासी मावल बलिष्ठ, अधिक सहिष्णु और सरल प्रकृति थे। वे परिश्रमी भी अधिक थे, आमोद-प्रमोद अथवा दुर्व्यसनों के प्रति उनमें आकर्षण नहीं था।"

उन्हें स्मरण हो आया—

'इस भूखण्ड को सूर्यास्त भूमि कहते हैं।' पूना के पश्चिम की ओर यह भूखण्ड अत्यन्त ऊबड़-खाबड़, और पठारों की शृँखला से घिरा

हुआ है, इसकी प्रत्येक दिशा में गहरी चक्करदार घाटियाँ हैं। इनमें वेसाल्ट के शिलाखण्ड उपलब्ध हैं। इस प्रदेश का प्रत्येक उपमण्डल एक देशमुख के अधीन था। वह देशमुख यथार्थ में राजा का प्रतिनिधि होता था। यह ग्रामों के कृषकों से राजा के लिये मालगुजारी एकत्रित करता था। पारश्रमिकस्वरूप देशमुख को उस प्राप्ति का एक निश्चित प्रतिशत मिल जाता था। इसके अतिरिक्त माफी-जोत के गाँवों की उपज भी उसे मिल जाती थी। ये देशमुख मराठे थे। प्रत्येक मावली देशमुख को पड़ोसियों द्वारा भूमि-अपहरण अथवा लुटेरों से रक्षा करनी होती थी। इसके लिये प्रत्येक मावली देशमुख एक सशस्त्र सैन्य टुकड़ी रखता था। राज्य की सेवा के लिये भी देशमुख तत्पर रहते थे और राज्य की ओर से उनको अनुदान या नकद अधिदान मिलते थे।

और इस भूखण्ड के लिये दादाजी कोंडदेव ने एक कृषि योजना बनाई, उसे क्रियान्वित किया। थोड़ी अवधि में ही उस भूखण्ड पर सहस्रों हल चलने लगे। दादाजी के आदेशानुसार स्वयं शिवाजी ने स्वर्ण-हल चलाया। उस समस्त मावल-प्रदेश में मावल भूमिधर हो गये, बलिष्ठ मावली कृषि-कर्म में निरत हो गये। रोटी-रोजी का व्यापक क्षेत्र उनके सामने आ गया। लूटमार और डाके आदि से उनको मुक्ति मिल गई। मावल सम्मान की दृष्टि से देखे जाने लगे। समाज में उनकी प्रतिष्ठा बढ़ गई। दादाजी कोंडदेव ने अपने महत्त्वाकांक्षी शिष्य शिवाजी को उन लोगों से सम्पर्क स्थापित करने की प्रेरणा दी। निरन्तर आवागमन से शिवाजी और उन लोगों में मैत्री सम्बन्ध सुदृढ़ होते चले गये। यहाँ तक कि मावल शिवाजी को अपना छोटा सेनानायक समझने लगे। शनैः-शनैः वे शिवाजी के संकेत पर अपने प्राण न्यौछावर करने को सदैव तत्पर रहने लगे। शिवाजी के लिये मावल मेरुदण्ड बन गये। दादाजी के कुशल तथा मृदु व्यवहार ने उन देशमुखों को अपना बना लिया। कभी-कभी वे

उन लोगों को पुरस्कार देते और समय-समय पर उनके सुकृतों को प्रेरित करते रहते थे।

दादाजी कोंडदेव ने उस भूमि में .एक शिवाजी कानून लगवाया। उसमें शतशः आम्रपादप लगवाये। कुछ पादप वहाँ पहले से ही थे। उनमें रसाल उगते थे। दादाजी ने वहाँ बाटिका निरीक्षक की नियुक्ति करदी। कई और सेवक उसकी सुरक्षा के लिये नियुक्त कर दिये। सेवकों को आदेश दिया गया यदि किसी ने भी फलों को चुराया तो कठोर दण्ड दिया जायगा। किन्तु एक बार वे स्वयं उस नियम का आखेट बन गये। एक ग्रीष्म के मध्यान्ह में उन्हें तृषा लगी। वे एक आम्रवृक्ष के नीचे खड़े थे, आम पका हुआ दीखा तो उन्होंने उसे तोड़ लिया और चूसने ही वाले थे कि उन्हें अपनी घोषणा स्मरण हो आई, "जो कोई फलों की चोरी करेगा उसे कठोर दण्ड दिया जायगा।" यहाँ उस समय कोई अन्य उपस्थित नहीं था, अतः फल तोड़ना चोरी बन गयी। अब क्या करें? फल तो चूसा नहीं गया, फिर भी कर्म तो चोरी का रहा। अन्तर्मन और उनके मस्तिष्क में द्वन्द्व छिड़ गया।

अन्तर्मन बोला—"हाँ, चोरी है कोंडदेव। स्वामी की बिना आज्ञा तुमने फल तोड़ लिया है।"

"तब?" मस्तिष्क में प्रश्न उठा।

"तब दण्ड-व्यवस्था हो!"

"दण्ड-व्यवस्था कौन दे?"

"न्यायदण्ड शाहजी और शिवाजी के प्रतिनिधि दादाजी कोंडदेव के पास ही तो है।"

"ठीक है, मैं दण्ड दूँगा।"

"किन्तु क्या दण्ड दोगे? न्याय-शास्त्री?"

"वही जो सामान्य चोर को दिया जाता है।

मैं अपराधी को उससे भी भयानक दण्ड दूँगा"

दादाजी कोंडदेव के कटिप्रदेश में खड्ग झूल रहा था। उन्होंने खड्ग निकाला, रिक्त खड्गकोष झूलने लगा। वृक्षों पर बैठे पक्षी क्रन्दन कर उठे। दादाजी कोंडदेव ने उस हाथ पर खड्ग प्रहार करना चाहा कि किसी ने खड्ग को पकड़ लिया। कुछ व्यक्ति आ पहुँचे थे, न्यायशास्त्री का न्याय देखकर उन्होंने साधु-साधु उच्चारण किया और खड्ग उनके हाथ से ले लिया। भुजा तो बच गई किन्तु दण्ड तो दण्ड ही है, मिलना चाहिये, भोगना चाहिये। दादाजी कोंडदेव ने उसी दिन से अपने गले में लौह-शृँखला डाल ली जो उनके विशाल वृक्ष पर झूलती रहती थी और उनका वह हाथ जिसने फल तोड़ा था, उस लौह-शृँखला में लटका रहता था। आजीवन दण्ड भोगा उस न्याय शास्त्री ने। फिर कभी उस वाटिका में से किसी ने कभी फल नहीं चुराये। शिवाजी के प्रतिनिधि की दूर-दूर तक प्रशंसा होने लगी। इसका प्रभाव अपराधी व्यक्तियों पर भी पड़ा। शिवाजी के राजस्व में कभी चोरी नहीं हुई। दादाजी के सहस्रों भक्त हो गये।

दादाजी ने उन कृषकों को जो वनखण्डों में चले गये थे, वापस लौटने के लिये प्रलोभन दिये, पुरस्कार और प्रेरणा के वशीभूत के कृषक पुनः अपने-अपने ग्रामों में आकर बस गये। जो पूना केवल देव-मन्दिरों अथवा उनके पुरोहितों की बस्ती मात्र था, वे उसकी समृद्धि के लिये प्राणपन से जुट गये। पूना में सर्वत्र खण्डहर ही खंडहर और विध्वंस ही विध्वंस दृष्टिगोचर होता था, दादाजी ने उसका पुनर्निर्माण कराया। देव-मंदिरों का जीर्णोद्धार कराकर, उनमें पुनः देव-मूर्तियाँ प्रतिष्ठित कराईं। पूना का विनाश हृदय-द्रावक बन चुका था। आतताई और बर्बर मदान्ध शासकों ने उन खण्डहरों को भी भूमिसात करने के लिये उन पर, गदहे जोत कर हल चलवा दिये थे, नीवें उखड़ चुकी थीं। मुस्लिम सैन्याधिकारियों के क्रोधोन्माद की पराकाष्ठा यदि कहीं दृष्टव्य

थी तो पूना गाँव में थी। अन्तिम मुस्लिम सैन्याधिकारी ने तो एक लौहखण्ड एक स्थल पर स्थापित करा दिया था, लोग उससे भयभीत रहते थे। इस अन्धविश्वास को दूर करने के लिये दादाजी कोंडदेव ने उस लौहखण्ड को उखड़वा दिया और अभिशाप-मुक्ति के लिये उस भूमि पर शिवाजी से स्वर्ण हल चलवा दिया। लोगों की भ्रान्ति दूर हो गई। अब यहाँ पुनः भवनों का निर्माण होने लगा। अल्पावधि में ही वहाँ समृद्धि के चिह्न दृष्टिगोचर होने लगे।

शिवाजी और उनकी माता जीजाबाई के निवास के लिये दादाजी कोंडदेव ने प्रासाद बनवाया। इसमें उनकी सुख-सुविधा का पूरा-पूरा ध्यान रखा गया। इस प्रासाद को रंगमहल की संज्ञा दी गई। रंगमहल के दो प्रांगण थे। चारों ओर मण्डलाकार स्तम्भ श्रेणियों तथा बहिष्पथ पर प्रस्थान करने के हेतु एक तोरणपथ से युक्त सामने-प्रांगण। यह आँगन अभ्यागतों तथा परिजनों के मनोरंजनार्थ प्रयुक्त होता था। भवन का द्वितीय प्रांगण जो भीतरी भाग में था आवास की महिलायें उपयोग में लाती थीं। आँगन में तुलसी का एक पौधा रोपा गया था, उसके नीचे सन्ध्योपरान्त जीजाबाई नित्य घी का दीपक जलाकर रखती थीं। प्रातः स्नान-ध्यान के पश्चात् तुलसी की वन्दना करतीं और उस पौधे को सींचतीं। उनकी धारणा थी कि रविवार को तुलसी माता उपवास रखती हैं—अतः न तो वे उसे जल-सिंचित करतीं और न उसके पत्ते ही तोड़ कर प्रयोग में लेतीं। मण्डलाकार स्तम्भ श्रेणियों से युक्त सामने वाले आँगन में सन्ध्या-समय पुरुषवर्ग विश्राम करता था। प्रांगण में, जब सेवक वर्गों में कोई भी व्यक्ति उसे आलोकित करने आता तो सभी पुरुष उस ज्योति-शिखा को हाथ जोड़ कर वन्दना करते। उनकी मान्यता थी कि ऐसा करने से जीवन ज्योतित होता है। इस कर्म को वे जीवन का प्रतीक मानते थे। दादाजी कोंडदेव के लिये यह क्षण सर्वाधिक आह्लादकारी होता था। दिन भर वे प्रशासकीय कार्यों से जूझते-रहते, पूना की समृद्धि की योजनाएँ बनाते रहते, दुर्ग की सुरक्षा के लिये आयोजन जुटाते।

मध्याह्न में साधारण विश्राम लेते और मध्याह्न की शिथिल होती घड़ियों के साथ वे पुनः अपने कार्य-सम्पादन करने में व्यस्त हो जाते। प्राचीन संस्कृत पद्य रचनाओं का अध्ययन करते और सन्ध्यावेला में जब नीरवता अपने पग प्रसारित करती, मधुर दीप-प्रकाश उनके कक्ष में ज्योतित हो जाता, तो वे शिवाजी को अपने समीप लेकर बैठते। जब शिवाजी अपना विशिष्ट रूपाकार बना हुआ आसन ग्रहण कर लेते तो दादाजी उन्हें भारतीय युद्धवीरों की गौरव गाथाएँ सुनाते। राक्षसों से विश्वामित्र के यज्ञ की रक्षा राम ने कैसे की ?–बताते। राणा-साँगा की युद्ध कला बताते। महाराणा प्रतापसिंह ने अन्य राजाओं से अलग पड़ कर भी अकबरी शक्ति से कैसे लोहा लिया ?–बताते। अकबर चैन की नींद क्यों नहीं सो सका, प्रभृति गाथाएँ शिवाजी बड़ी गम्भीरता से सुनते तो उन्हें बीजापुर का सुल्तान स्मरण हो आता। दादाजी वेद-उपनिषद् की महान् गाथाएँ शिवाजी के सम्मुख पढ़ते-सुनाते और अपने शिष्यराज को भारतीय गौरव की परम्परा और संस्कृति का मनन कराते तो शिवाजी एक स्वप्न में खो जाते। स्वप्न जिसे वे बाल्यकाल से अबेरे बैठे थे। जिस स्वप्न का वे संयोजन किये बैठे थे, दादाजी की प्रेरक वाणी उसे बल देती रहती थी। दादाजी उस महान् मंत्र को बार-बार स्मरण कराते कि "नवचन्द्र छोटा होता है और शनैः शनैः उसका पूर्ण विकास हो जाता है" सुन-सुन कर शिवाजी में कीर्तिस्पृर्द्धा का जागरण होना और भावी उज्ज्वल कल्पनाओं में खो जाते।

शिवाजी जब अध्ययन, ज्ञानार्जन कर अपने आचार्य से विदा होते, उनके चरण स्पर्श करते, विनय प्रदर्शित कर उनके आदेश की प्रतीक्षा करते और जब दादाजी अपने मंगल आशीर्वाद देते, अपना मंगलमय बायाँ कर उठाकर 'स्वति' शब्द उच्चारण करते तब ही वे वहाँ से जाते। शिवाजी दादाजी से विदा लेकर अपनी माता के पास पहुँचते और माँ गद्गद् हो उठती। शिवाजी नित्यप्रति अपनी माता के चरणों की रज लेकर अपने मस्तक को गौरवान्वित करते। मातृहृदय वात्सल्य

में डूब जाता और आशीर्वादों का अम्बार उँडेल देता। एक दिन शिवाजी ने कहा—

"माँ, इतना आशीर्वाद देकर भी सन्तोष नहीं होता, नित्य नये आशीर्वाद देती रहती हो !"

माँ मुस्करायी, शिवाजी के मस्तक पर हाथ रखा, शिवाजी विनत हो गये। माँ ने कहा—

"यदि पुत्र समस्त ब्रह्माण्ड का अधिपति भी हो जाये तब भी मातृ-हृदय यही चाहेगा कि उसका पुत्र उससे भी अधिक स्वत्वाधिकृत हो। उसके कीर्ति-यश और सम्पन्नता की निरन्तर वृद्धि हो। माँ अपने पुत्र की अथाह समृद्धि को पूर्ण नहीं मानती। यदि पुत्र सहस्राधीश से लक्षाधीश और फिर कोटयाधीश भी हो जाये तब वह अर्बाधिपति की कामना करेगी और फिर उससे भी बड़ी !

सुनकर शिवाजी हँस पड़े उनके मुख से केवल इतना भर निकला "माँ तेरा हृदय विशालतम है।"

शिवाजी ने अपने जीवन की परीक्षा में सफल होने के लिये अपने आचरण को उनके अनुरूप बना लिया। शिक्षा-अनुशासन में ही जीवन का चक्र गतिमय रखने पर मानव-जीवन समृद्धि उपलब्ध करता है। वे इसके लिये कटिबद्ध थे। वे मानते थे बिना दृढ़ संकल्प किये कार्य की सफलता कैसी ? यह विचार उनके मस्तिष्क में रह-रहकर कौंध जाया करता था। सोने से पूर्व वे दादाजी कोंडदेव और माता जीजाबाई के आशीर्वादों की व्याख्या मन ही मन करते और अपने सामान्य बिछौने में सो जाते।

प्रातःकाल ब्राह्ममुहूर्त में उठते, माँ उनसे पहले उठ जाती थीं और पूजाः अर्चन में व्यस्त हो जाती थीं। शिवाजी ब्रह्ममुहूर्त में जग कर

माँ के चरण-स्पर्श करते और आशीर्वाद पाते । इसके पश्चात् नित्य-कर्म से निवृत्त हो, साधारण जलपान करते, छाछ और मक्का की रोटी खाकर वे पहाड़ी क्षेत्रों में निकल जाते ।

शिवाजी उन स्थलों को नहीं भुला सके थे, जहाँ उनका बाल्यकाल व्यतीत हुआ था । वे उन पर्वतखण्डों पर चढ़ते, लाँघते तो बाल-जीवन की सुलभ सरल स्मृतियाँ स्मरण हो आतीं । अब शिवाजी के पग सशक्त थे, वे अब अधिपति थे । उन्होंने श्रमसाध्य कठिन कार्य में अपने आपको नियुक्त कर देना अच्छा समझा । इतना ही नहीं, उनकी वैसी रुचि बन गई थी । वे सोचते थे कि देखूँ मुझमें इस कठोर-कठिन कार्य को करने की शक्ति-सामर्थ्य है अथवा नहीं । और निष्कर्ष पर पहुँचते निरन्तर अभ्यास से क्या नहीं होता ? सफलता चरण चूमने लगती है, जीवन का अभ्युदय होता है, मार्ग प्रशस्त और यशस्वी होता है । ऐसी अनेक सूक्तियाँ उन्हें स्मरण थीं और उनको अपने जीवन में ढालने की निरन्तर चेष्टा करते थे । रात्रि को सोने से पूर्व वे चंद्र-कलाओं को गम्भीरता से देखते और सन्तोष की श्वास लेते । पूर्णिमा की रात्रि जब चन्द्रमा अपने पूर्ण यौवन पर होता—पूर्ण विकास पर उसे पाकर उन्हें प्रेरणा मिलती थी ।

अब शिवाजी को एक शक्तिवाहिनी की आवश्यकता थी । उन्होंने सैन्य शक्ति संचित करने के लिये उन्हीं दुर्गम प्रदेशों का चयन किया । वे दुर्गम बीहड़ निर्जन प्रदेशों में होकर उन व्यक्तियों के समीप पहुँचते और उनके सामने केवल मुस्कान बिखेर देते । शिवाजी जानते थे ये मराठेजन ही उनकी सैन्य शक्ति के मेरुदण्ड सिद्ध होंगे । वे उनसे मिलते उनके सुख-दुःख की बातें पूछते । फलतः वे जंगल निवासी कृत-कृत्य हो जाते । वे समझने लगे यही हमारा सच्चा अधिपति हैं । वे लोग शिवाजी के प्रति श्रद्धा और निष्ठा बिखेरने लगे, उनके साथ उठने-बैठने का अर्थ था उनको अपना बनाना । प्रेम के मंत्र सदैव सुखद-वृष्टि करते हैं और

यही सब शिवाजी को इन पर्वत-खण्डों के निवासियों को देना था और उनसे लेना था ।

शिवाजी सूर्यास्त से पूर्व अपने आवास की ओर लौटते । पक्षी उनका अनुगमन करते । बड़ा मनोरम दृश्य बन जाता । एक ओर एक व्यक्ति टेढ़ीमेढ़ी धरती पर क्लान्त-श्रान्त ठोकरें खाता निर्भय व्यक्ति और दूसरी ओर आकाश में उनके सहगामी खग ।

शिवाजी घर लौट आये थे पक्षी अपने-अपने नीड़ों में जा चुके थे और जो भूला-भटका रह गया वह पहुँच रहा था ।

जब शिवाजी, माता के पास पहुँचे तो देखा माँ हाथ में पूजा-आरती के लिये तैयार खड़ी है । उनके एक हाथ में थाल था, उसमें घृत का दीपक प्रज्ज्वलित था । सतर्क प्रहरी-सी वह दीप-ज्योति, प्रांगण के घनीभूत अन्धकार को उस प्रांगण में से निकाल चुकी थी— दीप-ज्योति अपने कर्मपथ के प्रति जागरूक थी । शिवाजी ने उस ज्योति को देखा, एक पुष्प-सी पंखुड़ी किन्तु प्रांगण का अन्धकार हरण करने की विलक्षण क्षमता उसमें विद्यमान है । शिवाजी को बड़ी प्रेरणा मिली । उसी अवस्था में शिवाजी ने मातृ-चरण की रज अपने मस्तक पर लगाई । माँ का हृदय गद्गद् हो उठा । माँ ने तुलसी की परिक्रमा की, दीपक तुलसी के पादप के नीचे रख दिया ।

शिवाजी के हृदय में मन्थन हो रहा था । एक ज्योति उस अंधकार को हर सकती है, जो समस्त प्रांगण को घेरे हुए है तो वे आश्वस्त हुए, शिवाजी भी ज्योति बन सकता है, मातृभूमि पर छाये विनाश के अन्धकार को दूर कर सकता है ।

माँ ने पुत्र से पूछा—"पुत्र क्या सोच रहे हो ?"

"माँ, मुझे प्रकाश की आवश्यकता है ?"

"प्रकाश ! ज्योति से ज्योति मिलती है पुत्र !"

"वह ज्योति मैं प्रज्ज्वलित करूँगा माँ। मातृभूमि अन्धकार में डूबी हुई है। परतन्त्रता रूपी अन्धकार का निवारण मेरी भवानी करेगी।"

माँ गद्गद् हो गई। माँ ने पुत्र को आशीर्वादों से मँढ़ दिया।

"माँ, तुम कितनी उदार हो।"

"शिवा मातृभूमि की रक्षा, उसकी समृद्धि......

माँ रुक गई, पुत्र ने जैसे भावी कार्यक्रम स्वीकार कर लिया। उन्होंने पूछा—

"आज किधर की यात्रा की ?"

"उन्हीं दुर्गम प्रदेशों में माँ, जहाँ मेरा बचपन बीता था। वहाँ के निवासी मुझे छोटा नायक कहने लगे हैं।"

"छोटा नायक ! ठीक है, किन्तु बड़े नायक पराधीनता के बीज बो रहे हैं, तुम्हारे पिता बीजापुर की सेवा में निरत अपनों को ही पद-दलित कर रहे हैं।"

"माँ, उस बन्धन को माँ का आशीर्वाद खण्डित करेगा।" शिवाजी ने अत्यन्त गम्भीरतापूर्वक कहा।

'शिवा, भवानी ही तेरी मंगल कामनाएँ पूर्ण करेंगी।"

माँ ने फिर आशीर्वाद दे डाला। उन्होंने कहा—

"शिवा भोजन का समय हो गया ! नियमित अनुशासित जीवन का ध्यान रख !"

"माँ, नियमित और अनुशासित जीवन का महत्त्व समझ लिया है, तभी तो इतनी दूर से ठीक समय पर माँ की चरण-रज लेने आ जाता हूँ यदि थोड़ा भी विलम्ब हो जाता तो माँ अपने कक्ष में चली नहीं जाती ? माँ मैं तो यहीं, इसी स्थल पर नित्य चरण-रज लूँगा, ठीक समय पर घर लौटूँगा।

माँ, हँस पड़ी, बोली जाओ, "भोजन तैयार है।"

शिवाजी चल दिये।

शिवाजी भोजन करने अपनी उसी मण्डलाकार स्तम्भ श्रेणियों से युक्त प्रांगण में पहुँचे तो उन्होंने देखा नित्य की भाँति सेवक ने केले का पत्ता बिछा दिया है और उसके चतुर्दिक सुन्दर-सुन्दर रेखाचित्र, खड़िया से अंकित कर रखे हैं। अब भोजन परोसन की देर है। नमकीन चावल, दूध और मक्का की वे ही सदाबहार रोटियाँ। उनके सामने आईं।

शिवाजी रुचिपूर्वक भोजन करने लगे।

●

नौ

शिवाजी ने जब उन्नीसवें वसन्त में पदार्पण किया तो उनकी देह पृथु हो आई, देहयष्टि कान्तियम होने लगी। उन्नत सिर, अंग-प्रत्यंग सुडौल एवं आकर्षक लगने लगा। उनके नेत्रों में दिव्य तेज आपूर्य हो गया। नासिकाग्र ने गरुड़-चंचु के सदृश रूप धारण कर लिया। ओजस्वी मुखाकृति को कोमल एवं श्याम-ताम्र वर्णी श्मश्रु आवृत्त करने लगे। उनकी पगड़ी के नीचे से निकलकर उनकी घुँघराली केशराशि की एक कृष्णवर्णा चमकीली लट उनके प्रशस्त भाल की ओर बढ़ आई। उनकी भुजाएँ असामान्यरूप से लम्बी थीं। वे आजानु भुजायें सामुद्रिक-गणित शास्त्रियों को शिवाजी के भविष्य-कथन कहने के लिये प्रेरित करती रहती थीं। ऐसी सुदीर्घ बाहुएँ तो किसी छत्रपति की होती हैं, कुछ ज्योतिष-शास्त्रियों ने कहना आरम्भ कर दिया था। जब वे किसी से सम्भाषण करते तो उनकी मुखाकृति पर मन्दस्मिति क्रीड़ा करने लगती, वह सम्मुख उपस्थित व्यक्ति को सहज ही अपनी ओर आकृष्ट कर लेती। स्वस्थ और सुगठित देह लेकर शिवाजी ने अपनी स्वप्न-सिद्धि के हेतु उद्योग करने की दिशा में अग्रसर होना आरम्भ कर दिया था। शिवाजी की गिद्ध-दृष्टि से अब यह छिपा नहीं रह सका कि उनके चतुर्दिक् अंकित होने वाली सीमाओं में भारतीय संस्कृति का गौरवमय भविष्य अन्धकार एवं बर्बर शासन-

व्यवस्था के थपेड़े सह-सहकर आकुल-व्याकुल हो उठा है और वह अपने उद्धारक की प्रतीक्षा कर रहा है ।

वृद्ध दादा कोंडदेव पूना तथा भोंसला परिवार की समृद्धि देखकर पुलकित हो उठते थे फिर भी यदाकदा जीजाबाई के सुखद भविष्य के लिये चिंतित रहते थे । शिवाजी का सम्पर्क जन-जातियों से प्रगाढ़ होता चला जा रहा था । इस सम्पर्क में भी उनका महान् योग रहता आया था । वे उनके साथ बढ़ती आयु में भी उन पर्वतीय खण्डों में जाते और शिवाजी के प्रति उन लोगों में निष्ठा जगाते । वे चाहते थे कि शिवाजी अपने पिता शाहजीराजे के सदृश ही वीर योद्धा के रूप में उठें ।

दादाजी कोंडदेव अपनी काष्ठ-शैया पर विश्राम कर रहे थे । शैया खुले आकाश में थी । उनकी दृष्टि गहन नीला परिधान धारण किये गगन-मण्डल की ओर स्थिर होती जा रही थी । वे जैसे किसी तेजस्वी, प्रकाश पूर्ण नक्षत्र को खोज रहे थे । नभोमण्डल में दूर-दूर तक अगणित तारकावलि छिटकी फैली थी । उनमें एक भास्वर नक्षत्र दृष्टि गोचर हुआ, शशांक से बहुत दूर उसकी स्थिति थी । दादाजी अपने भुजदण्ड तथा हथेली पर अपना तेजस्वी सिर स्थिर किये हुए थे, कि सामने से तीव्र गति से शिवाजी आये और विनय प्रदर्शन कर उनके सदा की भाँति पैरों की खड़े ओर हो गये । दादाजी ने लेटे-लेटे ही गम्भीर मुद्रा में कहा—

"बैठो शिवाजी !"

शिवाजी और दादाजी बैठ गये ।

"आचार्यवर किसी गहन विचार में हैं ?" शिवाजी ने सविनय कहा ।

"तुम्हारे विषय में ही सोच रहा था शिवाजी । शाहजीराजे ने अपना कीर्तिमान् स्थापित कर लिया है, किन्तु···

श्रौर दादाजी चुप हो गये, वे विचार-मग्न हो गये । अन्तर का ज्वार उनके तेजस्वी- गौरवर्ण मुख-मण्डल पर उभर आया । उनके अन्तरतम को मानो किसी पीड़ा ने घेरना ग्रारम्भ कर दिया । दादाजी के मनोवेग को शिवाजी समझते थे, उन्होंने कहा—

"आचार्यश्रेष्ठ, पिताजी का कर्म कर्त्तव्य निष्ठा के सूत्रों में बँधा हुआ है । वे जो कुछ कर रहे हैं, मैं उसका समर्थन नहीं करूँगा । बीजापुर का वर्चस्व बढ़ाते-बढ़ाते वे यह भूलते जा रहे हैं कि उनकी तलवार के नीचे कौन आ रहा है ? हिन्दूराजे ! उनके राज्य तिरोहित होते जा रहे हैं । उनके सैनिक जो कुछ करते हैं सो तो करते ही हैं, मुस्लिम सैनिक जनसामान्य तक पर बर्बरता का ताण्डव करने लगते हैं । वे मदान्धता—साम्प्रदायिक मदान्धता की ओट में पिशाच का रूप धारण कर लेते हैं । लूट, अग्निकाण्ड, बाल-हत्यायें, अपहरण कर भैरवनाद करने लगते हैं ।"

"वत्स ! उनकी संस्कृति विवेक से परिचालित नहीं है । बलात् विजय स्थाई कहीं होती, उसे विदा लेनी होती है । हमारी संस्कृति विघातक नहीं है, हमारी संस्कृति का रूप तो निर्माण का है, हमारी संस्कृति का क्षेत्र व्यापक—सीमातीत है । वह काल के पंखों में आबद्ध नहीं है । भूत, वर्तमान और भविष्य का जीवन उसमें अन्तर्निहित है, घुला-मिला है, एक काल का जीवन दूसरे काल के अंक में समाहित है । वह एक अजस्रधारा है जो निरन्तर प्रवहमान रहता है, अवरुद्ध होना वह जानता ही नहीं, उस स्थिति को वह अभिशाप मानता है । हम कदापि विस्मरण नहीं कर सकते कि हमारे जीवन का प्रकार ही हमारी संस्कृति है । विचार और कर्म के व्यापक क्षेत्र में राष्ट्र का जो सृजन है, वही उसकी संस्कृति है ।"

"राष्ट्र का सृजन !—राष्ट्र का निर्माण !"

शिवाजी के अन्तर्मन से स्वर उठे ! वे विचार-ग्रन्थियों में खोने लगे तो आचार्य ने पुनः सचेत किया—

"वत्स शिवाजी, राष्ट्र से महाराष्ट्र की व्यापक नींव स्थापित होने पर ही संस्कृति की सुरक्षा सम्भव है। संस्कृति की सुरक्षा अनिवार्य है क्योंकि यह मानव-जीवन की प्रेरक शक्ति बनी हुई है। जीवन का प्राणवायु है, जो उनके चैतन्य का साक्षी है। वत्स ध्यान रखना है, संस्कृति में न केवल देश अथवा राष्ट्र के प्रति अपितु विश्व के प्रति अनन्त मैत्री की भावना समाविष्ट है। स्मरण रखना शिवाजी, संस्कृति के द्वारा हम स्थूल भेदों के भीतर परिव्याप्त एकत्त्व के अन्तर्यामीसूत्र तक पहुँचने का प्रयास करें। यदि भारतीय संस्कृति छिन्न-भिन्न हो गई तो·········

दादाजी गहन चिन्ता में लिप्त होने लगे, विशाल अन्तर्मन कटु कल्पना प्रकट नहीं कर सका।

"आचार्यवर !"

शिवाजी आचार्य कोंडदेव की कटु कल्पना में प्रविष्ट होने लगे। उन्होंने अनुशासन के स्वर में कहा—

"आचार्य का मंत्र ग्रहण करता हूँ। संस्कृति छिन्न-भिन्न नहीं होगी, उसकी रक्षार्थ सर्वस्व न्यौछावर कर दूँगा। महाराष्ट्र की नींव········· एकछत्र········

शिवाजी आगे कहते कहते रुक गये।

"महाराष्ट्र की नींव ! एकछत्र······शिवाजी।"

दादाजी की प्रश्नसूचक दृष्टि शिवाजी के ललाट को पढ़ने लगी।

शिवाजी ने कहा—

"आचार्यवर, स्वतंत्र महाराष्ट्र के बिना आततायियों का भैरव-नर्त्तन नहीं रुकेगा। उस पिशाची को महाराष्ट्र का जीवन-स्रोत ही सुदूर समुद्र में बहा लेजा सकता है।"

दादाजी पुलकित हो उठे, उनकी कल्पना से बढ़कर शिवाजी के

अन्तरतम में महान् भावना, विशाल महत्त्वाकांक्षा छिपी दिखाई दी। उन्होंने कहा—

"वत्स, तुम्हें अपना लक्ष्य निर्धारित कर लेना चाहिये। जो नाविक अपनी यात्रा के लक्ष्य को नहीं पहचानता, वायु उसके अनुकूल नहीं बहता।"

"आचार्य, मेरी भवानी भारतीय संस्कृति की रक्षार्थ उठेगी। हमारी सीमान्त भूमि में शासकों का जो शोषण-चक्र चल रहा है उसमें विराम—अवरोध की नितान्त आवश्यकता है। उसे मृयमाण स्थिति तक पहुँचाना है। साम्प्रदायिक मदान्धता की भूतलीला का अन्त करना है। किन्तु नर-संहार........।"

शिवाजी विचारग्रस्त स्थिति में प्रवेश करने लगे तो दादाजी ने पुनः प्रेरित किया—

"शोषण और अत्याचार की परिखा पाटने के लिये प्राणों का उत्सर्ग करना आवश्यक है। यदि शोषण को रोकने के लिये अपने प्राण हथेली पर रखकर शोषक से संघर्ष रत हो उठता है, उससे जूझ पड़ता है तो उस नर-संहार का दायित्व आक्रामक पर नहीं होता, शोषक पर ही होता है।"

शिवाजी ने कहा—

"आचार्य का परामर्श स्वीकार करता हूँ।"

"लगन में मगन होने पर सफलता चरण-चुम्बन करती है, शिवाजी। लगन उस कार्य का सम्पादन अवश्य करा लेती है जिसके हेतु व्यक्ति संकल्पव्रती होता है। सात्विक संकल्पों के अभाव में महत्तर उद्देश्यों की पूर्ति नहीं होती। व्यक्तित्व की संकीर्ण घाटी में जन्म लेने वाले कंकड़ पाषाण का रूप नहीं ले सकते।"

दादा कोंडदेव ने शिवाजी को पुनः प्रेरित किया। शिवाजी ने दादाजी के प्रेरक वाक्यों को धर्म-सूत्रों के समान ग्रहण किया। दादाजी

उठकर खड़े हो गये तो शिवाजी ने विदा लेने की अनुमति चाही। दादाजी ने अनुमति देदी। अभिवादन कर शिवाजी अनेक कल्पनाओं में खोये हुए अपने मार्ग चले जा रहे थे। ज्योंही शिवाजी अपने शयन-कक्ष में पहुँचे मराठा अश्व-स्वामी तुकोजी चौर आ उपस्थित हुए। शिवाजी ने उनकी स्वयं नियुक्ति की थी, वैसे शाहजी ने पाटिलदारी की व्यवस्था में दादाजी कोंडदेव को सहयोग देने के लिये उनके अन्तर्गत श्यामराज नीलकण्ठ रानझेकर, बालकृष्ण हनुमन्ते, सोनाजी पन्त और रघुनाथ बल्लाल नियुक्त थे। इनके अतिरिक्त अब शिवाजी ने नारायण पन्त को और नियुक्त कर दिया था। रानझेकर पेशवा था और पन्त मंत्री। हनुमन्ते बल्लाल वेतनदाता। नारायण पन्त को शिवाजी ने खण्ड वेतन दाता के पद पर नियुक्त कर दिया।

तुकोजी चौर ने बीजापुर की आन्तरिक स्थिति की जानकारी शिवाजी को दी। उन्होंने बताया—

"बीजापुर का सुल्तान रोग-शैया भोग रहा है, अब अधिक आशा नहीं है। मृत्यु ही उसका वरण करेगी। लोग कहते हैं, औलिया फकीरशाह हाशिम उल्बी ने अपने जीवन में से दस वर्ष का जीवन सुल्तान को देने की प्रार्थना अपने खुदा से की है। प्रशासन की देखभाल भी बड़ी साहिबा कर रही हैं।"

"सुन्दर अवसर है तुकोजी। अवसर का लाभ उठाना अनुचित नहीं है।"

"सेनापति सुल्तान से रुष्ट हो गया है और वह मराठा-शक्ति का प्रशंसक बन गया है।"

शिवाजी ने चुटकी बजाई, मानो कोई उपलब्धि मिल गई हो, उनकी आकृति पर तेज चमकने लगा। वे बोले—

"तोरण का दुर्ग उसके अधिकार में है। सुना है दुर्ग में कई लाख होन संचित हैं।"

"उस पर अधिकार कर लिया जाय !"

"यही, यही ! तोरण दुर्ग सरलता से हमें मिल सकता है तुकोजी अपनी अश्व शक्ति कितनी है ?"

शिवाजी ने तुकोजी की इच्छा जानने की दृष्टि से कहा ।

"पर्याप्त है, स्वामी ।"

"पर्याप्त है तो चलो ।"

दोनों उठ खड़े हुए । शिवाजी ने किसी से कुछ कहा नहीं । न ही दादाजी कोंडदेव को कोई सूचना दी और न माता के आशीर्वाद की अपेक्षा की ।

रातों-रात अपने वीर बिश्वस्त सैनिकों के साथ चलते रहे । कुछ अश्वारोही मार्ग में छोड़ते गये । सुरक्षात्मक दृष्टि से ऐसा करना शिवाजी ने आवश्यक समझा । अश्वस्वामी तुकोजी चौर के साथ इस समय पाँच सौ अश्वारोहियों से अधिक नहीं थे । अश्व दूर छोड़ दिये गये और दुर्ग घेर लिया गया । शिवाजी और तुकोजी दुर्ग पर रस्सी फैंक कर चढ़ गये । दुर्गरक्षक गहरी निद्रा में थे । दोनों के ऊपर पहुँचने पर कुछ सैनिक और चढ़ गये । उन्होंने दुर्ग का द्वार खोल दिया । शिवाजी का आतंक था ही, सैनिकों की फुसफुसाहट की ध्वनियाँ दुर्ग के रक्षकों के कानों में पड़ने लगीं "सेनापति का आदेश है, संघर्ष मत लो, दुर्ग शिवाजी राजे को सौंप दो । और दूर से एक आवाज उठी—"सैनिकों ! हथियार मत उठाना । अन्यथा मराठा वीर काट डालेंगे ।" ऐसी ध्वनियाँ अर्द्ध रात्रि में निरन्तर गूँजती रहीं ।

मराठा सैनिकों का किसी ने प्रतिरोध नहीं किया, इस अनायास आक्रमण के विरोध में कोई दुर्गाध्यक्ष सम्मुख नहीं आया । सेनापति को शिवाजी और तुकोजी ने घेर लिया । उसकी छाती पर शिवाजी ने अपनी भवानी रखदी । सेनापति अपने कक्ष में अकेला था । उसने अपनी

विषम स्थिति देखी अब वह कर ही क्या सकता था ? सारे दुर्ग पर शिवाजी के सैनिकों का पूर्णतः आधिपत्य हो गया। शिवाजी ने उससे पूछा—

"कितने होन हैं तुम्हारे अधिकार में ?"

तलवार की नोंक उसके वक्ष में चुभने लगी थी। उसने प्राण-रक्षा का आश्वासन चाहा।

शिवाजी ने कहा—"प्राण ही नहीं, पुरस्कार भी मिलेगा।"

"तीन लाख होन !"

"पचास सहस्र तुम्हारे, शेष हमारे।"

शिवाजी ने निर्णय दिया। शिवाजी की भवानी की नौंक का भार उसने पुनः अनुभव किया !

"लीजिये चाबियाँ।"

तुकोजी ने चाबियाँ लेलीं। मराठे वीरों की सर्तक दृष्टि में कोषागार खोला गया पूरे ढाई लाख की होन मुद्रा मिल गई। पचास हजार सेनापति को दे दिये गये। वह सन्तुष्ट हो गया किन्तु अब ? अब कहाँ जायेगा ? शिवाजी ने पूछा—

"कहाँ जाओगे, बीजापुर ?"

"नहीं, जान बख्श थोड़े दी जायेगी वहाँ जाकर, शिवाजीराजे की कृपा मिले।"

"पूना चले जाओ। हमारे सैनिक सुरक्षित पहुँचा देंगे।"

"खुदा का करम राजे !"

शिवाजी ने पचास सैनिकों की सुरक्षा में सेनापति को निरस्त्र कर पूना की ओर भेज दिया। दुर्ग के अन्य सैनिकों के साथ भी उचित व्यवहार किया, किसी को प्रताड़ित नहीं किया गया, वरन् पचास सहस्र होन उनमें वितरित कर दिये। अब वे स्वतन्त्र थे।

शिवाजी ने उच्चारा—"प्रचण्डगढ़ अमर हो।"

समवेत स्वर गूँज उठा—"प्रचण्डगढ़ अमर हो।"

तोरण दुर्ग का नाम प्रचण्डगढ़ हुआ। बिना एक भी व्यक्ति का रक्त बहाये दुर्ग हाथ में आ गया। तोरणदुर्ग की भूमि पर रक्त की एक बूँद भी नहीं गिरी!

कुछ दिनों के लिये तुकोजी चौर को शिवाजी ने दुर्ग की सुरक्षा के लिये छोड़ दिया और आदेश दिया—"प्रद्योप की पहाड़ी पर नया दुर्ग बनाया जाय। राजगढ़ दुर्ग!"

तुकोजी ने मस्तक नवा दिया। शिवाजी लौट पड़े। जिस मार्ग से आए थे उसी मार्ग से। एक सैनिक मार्ग में बिखरे सैनिकों को सचेत करता आ रहा था—"बीजापुर से यदि रक्षादल आये तो संघर्ष में कोई पीछे न रहे।"

भोर हुई। दुर्ग पर शिवाजी के सैनिकों का अधिकार हो गया, जब नागरिकों ने देखा तो विस्मयविभोर हो गये। तुकोजी ने नगर में डौडीं पिटवा दी। दुर्ग पर मराठावीर शिवाजी राजे का अधिकार हो गया। मानवता ने सुना तो सन्तोष और शान्ति की श्वास ली।

बीजापुर में जब समाचार पहुँचा तो मराठों से दुर्ग छीनने के लिये मंत्रणा होने लगी। यहाँ भी शिवाजी के समर्थक मिल गये। पुरस्कारों के लोभ ने उनके मुँह बन्द कर दिये। एक अज्ञात स्वर उठा—

"शिवाजीराजे का कथन अधिक विश्वास के योग्य है, सेनापति अकर्मण्य था। शिवाजी ने जो कुछ किया है न्याय-संगत ही किया है। उनकी राज-भक्ति में किसी को आपत्ति नहीं होनी चाहिये।"

शिवाजी के दूत ने कहा—

"महानुभावो, शिवाजीराजे ने दुर्ग-रक्षक की अयोग्यता प्रमाणित करने के उद्देश्य से ही दुर्ग-प्रवेश किया है। नायक प्रदेश के मौसम् से

तंग था, वह मुक्ति चाहता था। उसे मुक्त कर दिया गया। जो नायक अनुकूल मौसम न मिलने के कारण दुर्ग की रक्षा नहीं कर सकता उसकी सेवाओं की राज को क्या आवश्यकता ?"

किन्तु कुछ ने इस कथन पर विश्वास किया, कुछ ने नहीं। आरोप-प्रत्यारोप चलने लगे। समय निकलने लगा। शिवाजी को अवसर मिल गया और थोड़े ही समय में तोरण से पाँच मील के अन्तर पर राजगढ़ दुर्ग का निर्माण हो गया। इसी प्रकार पूना से दक्षिण-पश्चिम की ओर पाँच-साढ़े-पाँच कोस की दूरी पर कोंडाणा दुर्ग था। उस पर भी इसी नीति से अधिकार कर लिया। पुरस्कार की राशि से सन्तुष्ट होकर मुस्लिम-दुर्ग-रक्षक ने उसे शिवाजी को सौंप दिया। शिवाजी का आतंक चारोंओर व्याप्त होने लगा। यद्यपि शिवाजी ने बीजापुर के प्रति खुला विद्रोह नहीं किया था, किसी न किसी बहाने से उन्होंने बीजापुरी दुर्गों पर आधिपत्य करना आरम्भ कर दिया था, इन आधिपत्यों के पीछे जो तथ्य था उससे आचार्य दादा कोंडदेव भलीभाँति परिचित थे।

महादजी का परिवारिक पद नीलकण्ठराव था। यह बीजापुरी शासन के अन्तर्गत नायकवाड़ था। इसको कुछ ग्राम पुरस्कार में मिले थे, निजामशाही वंश के विनाश तथा मुहम्मद आदिलशाही की निरन्तर चलती आई रुग्णावस्था में, उसने स्वयं को स्वतन्त्र घोषित कर दिया था और राजस्व की कमी के कारण वह प्रजा को लूटता रहता था।

अब पूना के दक्षिण में सीमान्त स्थित बीजापुर का अन्तिम दुर्ग था, पुरन्दर। सूबेदार महादजी नीलकण्ठराव के यह दुर्ग हाथ में था। वह क्रूर और अत्याचारी था। वह प्रजा को त्रास देने के कारण कुख्यात हो रहा था। उसके परिवार में भी अशान्ति का वातावरण चलता रहता था। महादजी नीलकण्ठराव ने अपनी पत्नी तक को, एक साधारण से अपराध पर, गोली की आहुति बना दिया था। पत्नी की हत्या के बाद, वह स्वयं भी अधिक समय तक जीवित न रहा। नीलकण्ठराव अपने

पीछे तीन पुत्र छोड़ गया। वे तीनों ही सूबेदारी प्राप्त करने के लिये परस्पर झगड़ने लगे। तीनों ने ही अपने-अपने पक्ष को दृढ़ करने के लिये होनों की थैलियों के मुँह खोल दिये। बीजापुर परिषद् में उपप्रदान का साम्राज्य छाये जा रहा था। बड़ी साहिबा की कोई चलने नहीं देता था और सुल्तान बीमारी से पीछा नहीं छुड़ा पा रहा था। जिस अधिकारी के पास होनों की जितनी बड़ी राशि पहुँच जाती थी वह उसका पक्ष प्रबल रूप से रखता। समय निकलता गया किन्तु परिषद् कोई निर्णय नहीं ले सकी। तीनों पुत्रों में से द्रव्य व्यय करने के उपरान्त भी सूबेदारी का मुकुट किसी को भी न मिल सका। शिवाजी ने इस स्थिति का लाभ उठाने का विचार किया। तुकोजी चौर को उन्होंने उन लड़कों के पास भेजा। तीनों भाइयों में नीलोजी नीलकण्ठराव, ज्येष्ठ था, और शंकरा नीलकण्ठराव कनिष्ठ, तीनों दुर्ग में ही रहते थे। यदि एक भी छोड़ देता उसका अधिकार वैसा ?

तुकोजी ने परामर्श दिया—प्रत्येक को प्रथक्-प्रथक्।··· "व्यर्थ ही धन खो रहे हो एक काम क्यों नहीं करते नीलोजी ?"

अन्धे को क्या चाहिये दो आँखें ! डूबते को तिनके का सहारा मिल गया हो जैसे उन्होंने उसकी बात ध्यान से सुनी। तुकोजी ने कहा—

"बीजापुर की परिषद् में शिवाजीराजे का वर्चस्व आप किसी से छिपा नहीं है। उनकी बात सब सुनते हैं।"

तुकोजी ने यह बात बना कर कही। सत्य का अंश इसमें नहीं था।

"तब क्या करें ? शिवाजीराजे यदि हमारी सहयता करें तो······

नीलोजी ने कहा।

मध्यम नीलकण्ठराव ने कहा—"यदि शिवाजी मेरी सहायता करें तो पाँच लाख होन दूँगा।"

शंकरा नीलकण्ठराव और आगे बढ़ा—"मध्यम से एक लाख अधिक !"

तुकोजी ने तीनों भाइयों को एकत्र कर कहा—

"यों नहीं बैठेगी बात !"

तुकोजी ने पाँसा फैंका। शिवाजी का एक मंत्र था—उनके पास-तीनों भाइयों को शिवाजी पर विश्वास था।

"मेरी बात स्वीकार कर लोगे ?"

"कर लेंगे।"

सबने सहमति प्रकट की।

"उन्हें अपना पंच बनालो !"

"शिवाजी को पंच बनालो ?"

"नहीं क्यों ? दूसरा मार्ग ही क्या है तुम्हारे पास ! या तो फिर आपस में कट कर मर जाओ !"

तीनों सोच में डूब गये। क्या करें ? क्या न करें ? गुत्थी सुलझ नहीं रही थी। स्थिति असह्य होती जा रही थी। परिणाम कुछ भी निकल नहीं रहा था। तुकोजी ने कहा—

"दीपमालिका आ रही है, शिवाजीराजे को आमंत्रित करो। अपना-अपना पक्ष उनके सम्मुख प्रस्तुत करो, उनका न्याय तो आप सब जानते हैं। पूना के पहाड़ी प्रदेशों में लोगों ने भूमि पर बलात् अधिकार कर लिया था, उन्होंने उस धरती का उसके वास्तविक अधिकारी को दिलायी। एक नहीं पचासों ऐसे प्रमाण हैं।"

नीलोजी ने प्रस्ताव स्वीकार कर लिया तो मध्यम और कनिष्ठ शंकराजी ने भी सहमति दे दी। तुकोजी की तीनों भाइयों ने प्रथक्-प्रथक् आवभगत की। उनमें प्रतिस्पर्द्धा हो गई। प्रत्येक सोच रहा था, यदि हमने अश्व-स्वामी तुकोजी को सन्तुष्ट कर लिया तो वे शिवाजी को उसके पक्ष के लिये अवश्य प्रेरित करेंगे।

श्रौर तुकोजी चले आए । दीपावली का पर्व भी श्रा पहुँचा। शिवाजी ने पुरन्दर जाने की तैयारी की। अपनी योजना को किसी पर प्रकट नहीं किया। वे तीनों दावेदारों की मध्यस्थता करने पहुँच गये। कई दिन तक विचार विमर्श होता रहा, अपना-श्रपना पक्ष प्रस्तुत करने में कोई पीछे नहीं रहना चाहता था।

दुर्ग में सफाई-पुताई चल रही थी। झौंपड़ियों और मकान-दूकानों के छप्पर वर्षा के आघातों से जीर्ण-शीर्ण हो जाते हैं, नये छप्पर बँधते हैं। इस वर्ष वर्षा का वेग श्रन्य वर्षों की अपेक्षा अधिक था, फूस की माँग बढ़ रही थी। पर्वतीय मार्गों पर चढ़ते श्रमिकवर्ग, फूस के गट्ठर लेकर दुर्ग में पहुँच रहे थे, यह क्रम कुछ दिनों तक चलता रहा। एक यात्रिशाला के समीप श्रमिक अपने गट्ठरों में बन्दूकें, तलवारें लेकर पहुँचने लगे। एक स्थान पर उन्हें एकत्रित किया जाता रहा। यह रहस्य किसी की समझ में नहीं आया और श्रन्त में जितने श्रमिक अन्तिम दिन पहुँचे, वे सब सैनिक थे—मराठा सैनिक।

"नीलकण्ठराव, मध्यम और कनिष्ठ शंकराजी ने मिलकर षड्यंत्र किया। ज्येष्ठ नीलोजी को ठिकाने लगादें। क्योंकि हम में वास्तविक श्रधिकारी तो ज्येष्ठ ही है। हमारी परम्परा अब तक यही रही है।"

मध्यम नीलकण्ठराव ने प्रस्ताव किया। कनिष्ठ शंकराजी ने समर्थन किया। उसने सोचा ज्येष्ठ के पश्चात् मैं मध्यम को······।

शिवाजी के सम्मान में एक विशाल भोज का आयोजन हुआ। मदिरा के दौर चले। शिवाजी और तुकोजी ने पान नहीं किया। तीनों भाइयों ने यद्यपि बहुत आग्रह किया किन्तु उन्होंने कहा—"आज अमावस्या का व्रत है, लक्ष्मीदेवी का व्रत है।"

दुर्ग पर अनेक दीप-शिखायें प्रज्ज्वलित हो उठीं। दीपमालिका का पर्व। हिन्दूघरों में लक्ष्मी का पूजन चल रहा था। बालक-बालिकाएँ सर्वत्र दीप जला रहे थे, गृहणियाँ सजी-धजी श्रपने परिचितों के यहाँ

आ जा रही थीं। किसी-किसी के हाथों में मिष्ठान्न की थालियाँ थीं। सभ्रान्त और श्रेष्ठिजनों की महिलाओं के साथ उनकी सेविकायें मिष्ठान्न पात्र लिये चल रहीं थी। नगर ज्योतिपुञ्ज से जगमगा रहा था।

तीनों भाई मदिरा में डूब गये। वे सुधबुध खो चुके थे। तुकोजी और अन्य मराठा साथी उन्हें रुक-रुक कर पिला रहे थे, वे पीते चले जा रहे थे।

तुकोजी ने नीलोजी से कहा—

"मध्यम और कनिष्ठ कह रहे हैं, कि आपको पीना भी नहीं आता। यह भी कोई पीना है, लीजिये और लीजिये।" तुकोजी ने अपने साथी से आँख का संकेत किया, स्वर्ण-मदिरापात्र भरने लगा। छलछलाने लगा पात्र। मध्यम ने ओठों तक उठाया तो जाम छलक पड़ा उसके वस्त्रों पर कुछ मदिरा गिर गई। शिवाजी हँस पड़े, तुकोजी चौर भी हँस दिये उनको हँसता देख मध्यम और कनिष्ठ भी हँस पड़े। यह देख ज्येष्ठ नीलोजी को क्रोध आ गया, उसने मध्यम और कनिष्ठ से कहा—

"ऐ ! बिचले, तुझे ही शऊर है क्या ? और इस छोटे को तो…यह तो अनाड़ी है।"

दोनों भाई बिगड़ पड़े, हाथापाई करने लगे। शिवाजी और तुकोजी यह सब देख रहे थे। तुकोजी ने उत्तेजित करने की दृष्टि से कहा—

"अरे, क्या करते हो, क्या इन्हें मार दोगे ?"

मध्यम और कनिष्ठ नीलकण्ठराव, दोनों ने एक साथ उत्तेजित होकर कहा—

"मार दें तो झगड़ा ही मिट जाय।"

तुकोजी ने अपने एक साथी की पगड़ी उनके सामने रखदी।

तीनों हाथापाई करने लगे।

मध्यम ने कहा, "वाह, तुकोजी आपने भी कमाल किया। पगड़ी उतार दी।"

कनिष्ठ ने कहा—इस पगड़ी से इसे बाँधकर दुर्ग के नीचे फैंक दें। दोनों नीलोजी को पगड़ी से बाँधने लगे। उनके साथियों ने मध्यस्था का प्रयास किया तो उन्हें तीनों ने ही डाट दिया। वे भी मदिरा देवी के प्रभाव में आ चुके थे। फिर बोले नहीं मौन हो गये, और दोनों ने मिलकर पगड़ी से ज्येष्ठ नीलोजी के हाथ-पैर बाँध दिये श्रौर उसे एक श्रोर उठा कर रख दिया।

शिवाजी ने उत्तेजना के स्वरों में कहा—"श्रभी कोई निर्णय नहीं दिया जा सकता।"

वे उठ खड़े हुए, तुकोजी तथा श्रन्य साथी उठ गये। दोनों ने बड़े भाई को एक कमरे में बन्द कर दिया। मराठा सामन्त यह सब कौतुक देखते रहे जब सभी लोग भोजन कक्ष से चले गये तो शिवाजी ने तुकोजी को आदेश दिया—

"कमरे पर पहरा बैठा दो।"

तुरन्त व्यवस्था हो गई। मध्यम श्रौर कनिष्ठ को मराठा-सामन्तों ने प्रथक्-प्रथक् लिया और अपने शयन-कक्षों की श्रोर ले गये।

तुकोजी ने शिवाजीराजे से निवेदन किया—

"यदि श्राज्ञा दें तो तीनों को......।"

"नहीं तुकोजी, पुरन्दर की भूमि पर भी रक्त की एक बूँद नहीं गिरेगी।"

तुकोजी ने मस्तक नवा दिया—

"जैसी भोंसलेराजे की इच्छा।"

"भवानी की यही इच्छा है।"

"श्रब क्या श्रादेश है स्वामी?"

"दुर्ग पर से बीजापुरी ध्वज उतार दिया जाय और मराठा-ध्वज…। शिवाजी को पूरी योजना प्रकट करने की आवश्यकता नहीं पड़ी। तुकोजी रात्रि भर दुर्ग की व्यवस्था में लगे रहे।

भोर का शंखनाद हुआ। नगर का जीवन दुर्ग के जीवन से भिन्न था। नगर में द्वार-द्वार पर गोवर-धन की पूजा हो रही थी। अक्षत कुमकुम उस गोवर से बनी मनुष्याकृति को महिलायें पूज रही थीं। दीपक उन पर जलाये जा रहे थे। हर्ष का पारावार बिखरता चला जा रहा था, जन-जन में।

दुर्ग के नीचे एक जल-धारा बह रही थी। शिवाजी उसे देख रहे थे। उनकी योजना उस जल-धारा के समान तीव्रगति से प्रवाहित हो रही थी। अन्तरतम से ध्वनि उठी—"शिवाजी धारा कभी रुकती नहीं, अबाधगति से बहती रहती है। रुक जाय तो धारा कहाँ? अधारा कहलाने लगेगी।" शिवाजी के समीप तुकोजी आकर खड़े हो गये थे, इसका भान भी शिवाजी को न था, वे तो विचारों की धारा में बह रहे थे। उन्हें प्रतीत हुआ धारा उन्हें आमंत्रित कर रही है, "आओ, आओ शिवाजी मुझ में स्नान कर रात्रि का प्रायश्चित करलो—विशुद्ध हो जाओ।"

"प्रायश्चित? कैसा प्रायश्चित?"

"जिस कूटनीति से पुरन्दरगढ़ को हस्तगत किया है क्या वह वीर पुरुष का कार्य है?"

"अवश्य, राजनीति में कूटनीति का आश्रय लेना दुष्कर्म नहीं है। इस कूटनीति ने नर-संहार नहीं किया, अन्यथा तेरा जल रक्तिम हो उठता। तेरा हृदय मरकत का जो वर्षण कर रहा है वह रक्त बहाता, रक्तहीन विजय श्लाघनीया है।"

"ठीक है शिवाजी, ठीक है, आओ मुझ में स्नान तो करलो। नीति विशारद के रूप में तुम्हें आमंत्रित करता हूँ, अपनी भूल सुधारता हूँ।"

श्रौर शिवाजी की विचारतन्द्रा जैसे ही भंग हुई, उनकी दृष्टि तुकोजी पर पड़ी। तुकोजी ने स्वामी के चरणों पर प्रभात का नमन किया। उन्होंने कहा—

"स्वामी, दोनों भ्राता छट-पटा रहे हैं। श्रीमान् से भेंट करना चाहते हैं।"

"आज्ञा है। नीचे झरने के पास......हम स्नान कर रहे हैं।"

शिवाजी में अब गम्भीरता आ चुकी थी। शिवाजी झरने की ओर बढ़ते गये...बढ़ते गये। उन्होंने वस्त्र उतारे श्रौर जलधारा से स्नान किया। मन में कुछ शान्ति आई। स्नान करके निवृत्त हुए ही थे कि सेवकों ने वस्त्र लाकर सम्मुख कर दिये। तुकोजी ने मध्यम और कनिष्ठ नीलकण्ठराव को शिवाजीराजे के सम्मुख प्रस्तुत किया। उन्हें मराठा सैनिक भालों के बीच में घेरे हुए थे।

उन्होंने श्राकर कहा—"शिवाजीराजे यह विश्वासघात ?"

"जैसे को तैसा।"

शिवाजी ने अति-संक्षिप्त उत्तर दिया।

"मतलब ?"

"जब दो भाई मिलकर तीसरे भाई की हत्या करने को कटिबद्ध हो जायँ तब क्या वह विश्वासघात नहीं था ? तीसरे भाई ने श्रपना स्वप्न सँजोया। बड़े के पश्चात् मध्यम की हत्या......क्यों ? नहीं ?"

उनसे उत्तर नहीं बन पड़ रहे थे—मन में चोर छिपे थे।

"शिवाजीराजे ये सैनिक किसके हैं ?"

शंकराजी नीलकण्ठराव ने प्रश्न किया।

"हमारे।"

"श्रौर हमारे ?"

"सब बन्दी बना लिये गये हैं अथवा उन लोगों ने हमारी सेवा स्वीकार करली है।"

"ज्येष्ठ की क्या स्थिति है तुकोजी ?"

"अभी सेवा में उपस्थित होता है स्वामी।"

नीलोजी पर से मदिरा का प्रभाव अभी दूर नहीं हुआ था वह आया लड़खड़ाता हुआ जब उसने अपने भाइयों को बन्दी स्थिति में देखा तो स्तंभित हो कहने लगा—"ठीक किया शिवाजीराजे, इन दोनों ने मेरी हत्या करने का षड्यंत्र रचा था, आपने मुझे बचा लिया उपकृत हूँ, भोंसले राजे, इन्हें मृत्यु दण्ड मिलना चाहिये। आप ठीक कर रहे हैं। आपका न्याय सच्चा है।"

शिवाजी हँस पड़े। वे बोले—

"हमारा न्याय यही है, तुम तीनों ही पुरन्दर दुर्ग की सूबेदारी के अयोग्य हो। तुम तीनों को जीवन-यापनार्थ छोटी-छोटी जागीरें दी जाती हैं।"

तुकोजी चौर ने शिवाजी का आदेश सुना और तीनों को दुर्ग से बाहर करने की व्यवस्था में निरत हो गये। तीनों भाई आपस की फूट का फल भोगने के लिये विवश हो गये।

पुरन्दर दुग की समुचित व्यवस्था कर शिवाजी और तुकोजी चौर पूना की ओर चल दिये।

रंगमहल में आज भी दीपमालिका मनाई जा रही थी। शिवाजी की रक्तहीन विजयों को सुनकर पूनावासी आह्लादित हो उठे। आचार्य दादा कोंडदेव तथा माता जीजाबाई को शिवाजी का भविष्य समुज्ज्वल दृष्टिगोचर होता दीखने लगा।

दस

महाराष्ट्र में रक्तहीन क्रान्ति के परिणामस्वरूप जन-जीवन में एक नई उमंग उठने लगी। आतताई और साम्प्रदायिकता के दमन-चक्र से पीड़ित जनमानस में नवीन चेतना आने लगी। शास्त्रवेत्ता ब्राह्मण-वर्ग को अपनी सुरक्षा का युग आरम्भ होता दिखाई दिया। अनेक ब्राह्मण शिवाजी के अनुयायी बन गये। सहस्रों मराठे सैन्यदल में नियुक्ति लेने लगे। शिवाजी वास्तव में उन्हें अपने एवं राष्ट्र के उद्धारक प्रतीत होने लगे। उनमें नवजीवन का संचार होने लगा। बाल्यावस्था के साथी, मावल-प्रदेश के अल्पवयस्क मित्र शिवाजी के समीप आ आकर एकत्रित होने लगे। वे त्याग और बलिदान की भावना से पूर्ण थे। शिवाजी और दादाजी कोंडदेव का नवीन स्वराज्य का स्वप्न सिद्ध होने लगा। शिवाजी ने अपने सहयोगियों का एकत्रित किया। गोमाजी नायक पनसम्बल येसाजी कंक, तानाजी मालसुरे, बाजी पासलकर तथा बाजीराव जेधे उनका आह्वान सुनकर उनके समीप आये। ये व्यक्ति विभिन्न स्थानों से आये थे और इनका अपने-अपने क्षेत्रों में पर्याप्त प्रभाव था। इस प्रकार शिवाजी का आह्वान, मंत्र-योजना उन क्षेत्रों में एक साथ स्वतः प्रसारित हो जाते। दादाजी कोंडदेव इस मंत्रणा में विशेष रूप से आमंत्रित थे। आचार्य की आज्ञा लेकर शिवाजी ने खड़े होकर उत्साह-वर्द्धक एवं ओजस्वी वाणी में आह्वान किया—

"हम विदेशियों द्वारा प्रदत्त पुरस्कारों अथवा पैतृक सम्पत्ति से क्यों सन्तुष्ट रहें। नहीं, हम सन्तुष्ट नहीं होंगे। हम भारतीय हैं, भारत हमारा देश है, इस पर साम्प्रदायिक भावना से ओत-प्रोत शासकों का श्राधिपत्य है हम उन्हें शान्ति से नहीं बैठने देंगे। जो शासक प्रजा में साम्प्रदायिकता का विष फैलाकर अपनी स्वार्थसिद्धि करता है वह भारत का शत्रु है, उसको निर्मूल करने की आवश्यकता है। मातृ-भूमि और हमारी धार्मिक सहिष्णुता पर आघात करने वाली भावनाओं को दूर करना है। अन्यायी और अत्याचारी शासकों से प्रतिशोध लेना हमारा कर्त्तव्य है। जो शासक मदान्धता के कारण,साम्प्रदायिक रूढ़ियों से ग्रस्त होने के कारण हमारे देव-मंदिर पर आक्रमण करने के लिये अपने सैनिकों को आदेश देता है वह हमारा शासक नहीं, शत्रु है और शत्रु को इस धरती पर रहने का अधिकार नहीं। हम अपने मंदिरों के विध्वंस को रोकेंगे, तलवार के बल पर रोकेंगे। अपनी मातृभूमि को स्वतन्त्र करायेंगे। हम देश में एकता के बीज बोयेंगे, यदि हम अपने सद्-प्रयत्नों के प्रति कर्त्तव्य-निष्ठ रहेंगे तो ईश्वर हमारी सहायता करेगा। विगत युग साक्षी है, मानुषी-सद्प्रयासों को सहयोग और जन-जन का आशीर्वाद मिलता है। हम अपने देश के निर्माता हैं। देश में साम्प्रदायिकता की जो विष-बेलि रोप दी गई है, उसे उखाड़ फैंकना है। भारत का प्रत्येक कर्मनिष्ठ–मातृभूमिनिष्ठ निवासी हमारा भाई है, चाहे वह किसी धर्म विशेष का पालन करने वाला क्यों न हो। हमें उस शासन की स्थापना करनी है जहाँ धर्म के नाम पर अत्याचार नहीं होते, धर्म-सम्बन्धी सुविधा जिस शासन में मुक्त होगी। जातिवाद और वर्गवाद का जहाँ उद्घोष नहीं होगा। वर्तमान मुस्लिम शासन में अनेक दोष हैं, वह हिन्दू और मुसलमान में भेद करता आ रहा है, ये राज्य (दक्षिण के मुस्लिम राज्य) धार्मिक मदान्धता के अन्धकार से आच्छन्न हैं। कोई किसी के प्रति सहानुभूति नहीं रखता। अधिकारी वर्ग स्वच्छन्दता का उपयोग कर रहा है। महिलाओं का अपहरण, उनके

साथ बलात्कार किया जा रहा है, उनके शील के साथ होली खेली जा रही है। हम नेत्र बन्द कर अब नहीं देख सकते।

शिवाजी ने एक ओजस्वी वक्तृता दे डाली। साथी-सहयोगियों की धमनियों में उष्णता भर गई उन्होंने समवेत स्वर में कहा—

"हम यह अत्याचार कदापि सहन नहीं करेंगे। हम प्राणाहुति देने को तत्पर हैं।"

"भारतमाता धन्य हुई–जननी-जन्मभूमि उपकृत हुई।" शिवाजी ने उद्घोष किया।

मंत्रणा चलती रही। सोनाजी पंत ने अपना दृष्टिकोण प्रस्तुत किया उन्होंने कहा-—

"जिसका संगठन समर्थ है, जिसका संगठन शक्तिशाली है उसे किसी का भय नहीं है। शस्त्र हमारे पास भी हैं। उन शस्त्रों का प्रयोग हम करना जानते हैं। हमारी सैन्य-शक्ति में पर्याप्त वृद्धि होती जा रही है। उसके भरण-पोषण का दायित्व दुष्कर हो रहा है। हमारी समस्या का समाधान हमारे दुर्गसेतु से पूर्व के साधनसम्पन्न समुद्र तटीय भूभाग है। वह प्रदेश हमारी आवश्यकता की पूर्ति के लिये वरदान है। इस भूभाग की राजधानी कल्याण है। हमें उस पर अपना आधिपत्य स्थापित करना होगा।"

शिवाजी ने मंत्रिराज को टोकते हुए कहा—"मंत्रीश्वर सोनाजी पन्त आपकी कामना एक रात्रि के पटाक्षेप में पूर्ण हो जायगी।"

दादाजी कोंडदेव अस्वस्थ थे, उन्होंने बैठे-बैठे ही शिवाजी को आशीर्वाद दिया। उन्होंने कहा—

"मेरा अन्तिम समय आ गया है, शरीर में अब अधिक शक्ति नहीं रह गई है।" शिवाजीराजे से आश्वासन चाहते हुए उन्होंने फिर कहा—"जब शिवाजी महान् शक्तिसम्पन्न राष्ट्र—महाराष्ट्र की स्थापना करलें

उस समय भारतीय जीवन की पुरातन, नैतिक शक्तियों और सद्‌गुणों की पुनः प्रतिष्ठा करें।"

शिवाजी ने विनीत भाव से आचार्य की कामना के प्रति आश्वासन दिया। दादाजी गद्‌गद् हो गये। उनका शिवाजी के साथ चिरकालीन संम्पर्क था, उनमें वात्सल्यभावना उमड़ आई। उनके नेत्रों में अश्रु मुक्ता झिलमिला उठे। उन्होंने शान्ति की एक गहन श्वास छोड़ी और उन्होंने अपने नेत्र बन्द कर लिये और भद्रपीठिका पर एक ओर लुढ़क गये। उपस्थित समुदाय हत्प्रभ हो गया। यह क्या विधि का विधान ? क्या शिवाजीराजे से आश्वासन लेने ही आज की मंत्रणा-परिषद् में सम्मलित हुए थे। सभी ओर शोक के बादल छा गये। दादाजी का अन्तिम-मिलन किस क्षण हुआ ? जब वे नये महाराष्ट्र का स्वप्न सँजो रहे थे।

रंगमहल में अंधकार छा गया। रंगमहल के ईंट-पत्थर रो उठे। महाराष्ट्र का स्वप्न-सृष्टा-मंत्रप्रदाता सहसा चल दिया।

पूर्ण सम्मान के साथ दादाजी का अन्तिम संस्कार स्वयं शिवाजी ने किया।

अब जब भी शिवाजी रंगमहल में जाते, प्रांगण को देख विचलित हो उठते। उन्हें शून्यता का आभास होता। अब प्रांगण में भित्ति के सहारे से शास्त्र एवं संस्कृत के काव्य ग्रन्थ विलोप हो गये। वह यन्त्र अब वहाँ से हट गया था जहाँ दादाजी पूना की पाटिलगिरी का लेखा-जोखा देखते रहते थे। रात्रिकालीन परामर्श से अब शिवाजी वंचित हो गये थे।

दादाजी की वियोगत्रस्तता के कारण वे अपनी पत्नी सईबाई को कई दिन तक भूले रहे, किन्तु माँ जीजाबाई को वे न विस्मृत कर सके, उन्हें तो न देखना जैसे उनके लिये महान् पातक सिद्ध होता। माँ से सदैव की भाँति मिलते रहे—परामर्श करते रहे।

शिवाजी की दृष्टि अब कल्याण दुर्ग पर थी। कल्याण प्रदेश अत्यन्त समृद्ध और वैभवशाली था। वहाँ विदेशी व्यापारी प्रचुरमात्रा में आते रहते थे। विशाल वटवृक्षों के नीचे बाजार लगाये जाते थे। अरब तथा अफ्रीका के व्यापारी इनमें भाग लेते थे। इनके अतिरिक्त अबीसीनियाई एवं पारसी व्यापारीगण की बड़ी-बड़ी व्यापारिक कोठियाँ स्थापित हो चुकी थीं। इनकी कोठियाँ विशेष ढग से सुसज्जित थीं। उनके बाह्य भाग की भित्तियों पर बेल-बूटे, पत्तियाँ और नाना प्रकार के पुष्प चित्रित थे। यूनानी व्यापारीगण इन कोठियों से भली-भाँति परिचित थे। यहाँ कीमखाव, आबनूस की लकड़ी तथा पीतल के बर्तनों का व्यापार होता था। यहाँ धन अपार था, व्यापार भरपूर था। किन्तु मुस्लिम वर्ग की युवक पीढ़ी बीजापुर की सेना में अथवा दूसरे प्रकार की सेवा में रहने लगी थी। जन-जीवन में धीरे-धीरे आलस्य और अकर्मण्यता का प्रवेश होने लगा था। सद्यनीरा सरिता खजूरों के लम्बे लम्बे वृक्षों के मध्य में होकर कलकल निनाद से बह रही थी। इस भू-प्रदेश पर अफ्रीका से आए व्यापारी समुद्री जहाज लंगर डाले खड़े रहते थे। ये एक मस्तूल वाले जहाज थे। मछुओं की नौकाएँ खड़ी रहती थीं। बीजापुर राज्य के हरे एवं चन्द्राकार झण्डे अनेक स्थानों पर फहराते रहते थे।

इस प्रदेश का राज्यपाल मुल्ला अहमद था। यह अरब देश का निवासी था। यह प्रमादी होता चला जा रहा था। शासकीय कार्यों तक में उपेक्षा करने लगा था किन्तु बीजापुर का सुल्तान इसी बात से सन्तुष्ट था, वह प्रतिवर्ष नियमित रूप से राजस्व उसके पास भेज देता था।

कुछ ही दिवस बीते होंगे, उसने सुदृढ़ सुरक्षा-व्यवस्था में बीजापुर को राजस्व भेजा था। राजस्व की सुरक्षा करता हुआ वह दल एक पहाड़ी दर्रे में होकर जा रहा था। यह प्रदेश निर्जन था। खैरे रंग की आग्नेय चट्टानें उन्हें दीख रही थी सपाट समुद्रता पर कहीं-कहीं पर्वत

श्रेणियाँ उठती-डूबती दृष्टिगोचर हो रही थीं। पहाड़ियों पर नाना प्रकार की मेघ आकृतियाँ छा रही थीं। राजस्व-रक्षक दल निर्भय बढ़ा चला जा रहा था। सुरक्षा दल ने सहसा बन्दूकें छोड़ दीं, पहाड़ियों में उनकी गूँज उठी और दूर-दूर तक अनु गूँज उठने लगीं। एक पहाड़ी से एक बाघ निकलकर सामने आ गया था। कुछ आगे बढ़ते ही उसका शव पहाड़ी से लुढ़ककर नीचे मार्ग में आ गिरा। उस बाघ के पेट में और मस्तक पर गोलियाँ लगी। रक्त बह रहा था। वह मुँह बाये पड़ा था। उसने तंग घाटी का मार्ग रोक दिया था। दो-चार सैनिकों ने मिलकर उसे एक ओर घसीटा और एक खच्चर की पीठ पर लाद दिया। कितनी सरलता से बाघ का आखेट मिल गया था ! पड़ाव जहाँ भी डालना होगा वे लोग उसकी सँभाल कर लेंगे। रक्षक-दल आगे बढ़ने लगा। कोई आधाकोस की दूरी निकली होगी कि झाड़ियों से घिरी भूमि आ गई। रक्षकदल परिचित था। उसने सर्तकता की दृष्टिकोण को अपनाया। कुछ शंका हुई। राजस्व से लदी गाड़ियाँ चर्रचूँ-चर्रचूँ करती चली जा रहीं थी। शशक और शृगाल यदाकदा दीख जाते थे किन्तु रक्षक-दल उन पर गोली नहीं चलाता था। गोली चलाकर भय मोल लेना आवश्यक नहीं समझा गया। सम्भव है, गोलियों की आवाज सुनकर कहीं कोई दस्यु अथवा कोई शत्रु उन पर आक्रमण कर दे। अतः यथाशक्य रक्षा-दल अपनी बन्दूकों को, तलवारों और भालों को निष्क्रय बनाकर ही चल रहा था, यद्यपि बन्दूकें भरी हुई थीं, तलवार और भाले खुले-चमक रहे थे। वे आगन्तुक शत्रु के लिये मृत्यु रूप थे। गाड़ियाँ आगे बढ़ीं, पीछे से सहसा सुनाई दिया—

"हर-हर महादेव !"

रक्षादल सकते में पड़ गया। यह गूँज कैसी, यह हर-हर महादेव का घोष कैसा ? किन्तु सामने कोई नहीं आया। स्वर दूर पर गूँजा

था। फिर भी रक्षक दल ने विशेष सतर्कता बरती। गाड़ियाँ रुक गईं। स्थिति से अवगत हुए बिना आगे बढ़ना उचित नहीं समझा। सहसा पहाड़ियों से मराठा सैनिक निकल आये, संख्या में तीन सौ थे। विस्मित रक्षा–दल ने इस अचिन्त्य संकट से संघर्ष लिया। मराठा सैनिकों का दबाव भारी पड़ गया। अनेक बीजापुरी सैनिक मारे गये, शेष बचे वे भाग छूटे। इस संघर्ष में दस बारह मराठा सैनिक मारे गये।

अब राजस्व शिवाजी के लिये थे। उस प्रदेश की ओर उसकी गति बढ़ने लगी। बन्दूकें और तलवारें उस राजस्व की रक्षा में सन्नद्ध थीं। अपार द्रव्य-राशि एक सामान्य संघर्ष में मिल गई। शिवाजी ने अपने मृत सैनिकों के परिवारों को पर्याप्त धनराशि दी। संघर्ष में जिन सैनिकों ने भाग लिया था उन्हें पुरस्कार दिया।

कल्याण नगर में वर्षा हो रही थी। घन-घोर वर्षा से जन-जीवन असामान्य हो रहा था। लोग घरों में बैठे थे, बाजारों में आवागमन रुक गया था। इसी समय मराठा सैनिकों के एक दल ने कल्याण के बाजार में प्रवेश किया। भाले और तलवारें निर्जन से बाजार को भी आतंकित करने लगीं, एक दल द्वार–रक्षकों पर पहले ही अधिकार कर चुका था, अब वहाँ बीजापुरी रक्षकों के स्थान पर शिवाजीराजे के बलिष्ठ मराठे सैनिक थे। बाजार में जो सैनिक दल आया था, बीजापुरी सैनिक दल ही लगता था, किन्तु जिसने देखा विस्मय अवश्य किया। इस घनघोर वर्षा में सैनिकों का आवागमन अवश्य आश्चर्य का केन्द्रबिन्दु था। सैनिकदल राजमहल की ओर बढ़ रहा था, उसकी गति में शीघ्रता नहीं थी, सामान्य गति से बढ़ रहा था...... और थोड़ी देर में वह राजमहल पहुँच गया। उसने सामान्य संघर्ष में ही राज्यपाल को बन्दी बना लिया। मुल्ला अहमद का परिवार इसी राज-भवन में था। सारा परिवार भाग छूटा, सैनिकों ने उनका पीछा नहीं किया। मराठा सैनिकों ने राजमहल के प्रत्येक बहुमूल्य पदार्थों की सूची बनाई। जिन जिन पदार्थों

से होन मिल सकते थे और शिवाजी का राजस्व बढ़ सकता था, पूना बीजापुर भेज दिया। राजभवन को लूटते समय आबाजी को, एक अद्‌भुत वस्तु मिली। एक पर्दे में एक देह लिपटी हुई एक कोने में खड़ी थी। इसने अपनी रक्षा की समुचित व्यवस्था कर रखी थी किन्तु युवक आबाजी की दृष्टि उस पर पड़ी। उन्होंने देखा उसका एक चरण चमक रहा था, गौरवर्ण ! आबाजी के एक हाथ में खड्ग था, दूसरे से उन्होंने पर्दा खींच लिया, एक नवयुवती गिर पड़ी। जब उसने आबाजी को खड्ग लिये देखा तो भयातंकित होकर अनुनय, विनय करने लगी। उसका स्वर लड़खड़ा रहा था। वह बोली—

"दुहाई है शिवाजीराजे।"

आबाजी हँस पड़े। युवती ने उन्हें शिवाजी समझा। अब तक उसने शिवाजी को देखा नहीं था। वह गिड़गिड़ाने लगी—

"खुदा के नाम पर···मेरी जान······"

उस सुन्दर आकृति युवती ने हाथ जोड़ दिये।

आबाजी ने कहा—"इतनी सुन्दर वस्तु को नष्ट नहीं किया जाता। सुन्दर वस्तु अपनाने के लिये होती है।"

आबाजी का हृदय उछलने लगा। सौन्दर्य और यौवन की मुखरित प्रतिमा को देखकर किसका मन तरंगित न हो उठेगा। वे उसकी ओर बढ़े कि मन ने झटका खाया, लूट का धन स्वामी का है, इस पर तो शिवाजीराजे का ही स्वत्व है·····ठीक है···शिवाजीराजे यह भी पाकर प्रसन्न हो जायेंगे। मुझ पर भी प्रसन्न हो जायेंगे।·····और आबाजी ने सौन्दर्य मूर्ति से प्रश्न किया—

"तुम्हारा परिचय, बानो !"

"राज्यपाल की पुत्रवधू। महरुन्निसा।"

"राज्यपाल की पुत्रव को गौरवधू मिलना चाहिये।"

आबाजी ने फिर पूछा—

"अकेली कैसे छूट गईं ?"

"भगदड़ में रह गई, खुदावन्द ।"

"बानो, हम तुम्हें शिवाजीराजे की सेवा में भेजे देते हैं। हम तो उनके सिपाही हैं।"

युवती अवाक् रह गई।

बोली—"नहीं-नहीं मुझे कहीं मत भेजिये खुदा के बन्दे, रास्ते में सिपाही मेरी......"

"शिवाजीराजे की भेंट—सम्पत्ति को बिना उनकी पूर्व स्वीकृति के कोई भी स्पर्श नहीं कर सकता।" आबाजी ने कहा।

इसी बीच कुछ सैनिक आ गये। यह दृश्य देख कर वे भी स्तब्ध रह गये। उन सैनिकों से आबाजी ने कहा।

"सैनिको ! इस देवी को पूरे सम्मान के साथ...शिवाजीराजे की सेवा में...समझें ?

तुरन्त पालकी की व्यवस्था हुई। युवती को खिन्न मन उसमें आरूढ़ होना पड़ा।

वह सोच रही थी, जब शिवाजी का सिपाही इतना नेकचलन है तो वे खुद कैसे होंगे ? शिवाजी के दर्शन करने की लालसा उसके मन में उठी, उसे अब भय रहा नहीं था। हाँ, परिवार का बिछोह उसे अवश्य सता रहा था। उसका अन्तरमन कह रहा था, शिवाजीराजे अवश्य दयालु और नेक होंगे।

सन्ध्या हो चली थी। पालकी शिवाजी के शिविर में लाकर रखी गई। जब उन्होंने पालकी देखी तो पूछने लगे—

"यह क्या है ?"

"स्वामी, आबाजी ने भेंट भेजी है।"

एक सैनिक ने पालकी का पर्दा उठा दिया । शिवाज का स्वर फूटा—

"कौन है बाहर आओ ?"

युवती आदेश सुनते ही बाहर आ गई । शिविर का अँधेरा जैसे हट गया । युवती ने शिवाजी को अपनी आँखों की कनखियों से देखा । मन ने कहा—सुन्दर, वीर और……जवान……। युवती ने अपनी आँखें धरती में गढ़ा दीं ।

शिवाजी ने पूछा—"तुम कौन हो बानो ?"

"कल्याण के राज्यपाल की पुत्रवधू ।"

"यहाँ क्यों ? क्या कोई निवेदन करने आई हो !"

युवती बोली नहीं ।

सैनिक ने उत्तर दिया—

"स्वामी लूट में मिली है, आबाजी ने आपके लिये भेंट……"

शिवाजी बरस पड़े ।

"सावधान !" यदि इतनी सुन्दर मेरी माँ होती ।"

युवती विस्मय में डूब गई । इतना महान् चरित्र ! उसकी आँखें भर आईं ।"

वह बोली—

"खुदावन्द… !"

केवल इतना ही उसके मुख से निकला । शिवाजी ने आदेश दिया ।

"पूरे सम्मान के साथ इनके परिवार वालों के पास भेज दिया जाय हमारी ओर से मूल्यवान् भेंट भी ।…साथ ही इनके पिता को मुक्त कर दिया जाय, वे बीजापुर जा सकते हैं ।"

तुरन्त आदेश का पालन हुआ । पालकी लौट गई । शिवाजी ने आबाजी को भर्तस्ना भरा पत्र लिखवाया । उसमें लिखा गया । किसी भी संघर्ष में किसी भी महिला को वही स्थान-

सम्मान दिया जाय जो हमारी माता बहिनें अथवा पुत्रियाँ अपेक्षा करती हैं।"

मुल्ला अहमद के पास जब उसकी पुत्रवधू पहुँची और उसने शिवाजी की प्रशंसा की तो उसने मुँह बिचका दिया। श्वसुर का यह रूप उसे अप्रिय लगा। मुल्ला अहमद का शेष परिवार बीजापुर पहुँच चुका था। पदच्युत राज्यपाल मुल्ला अहमद बीजापुर पहुँचा। उसने सुल्तान की शरण ली। दरबार चल रहा था। इसमें सुल्तान उपस्थित था। वह कुछ स्वस्थ हो गया था। मुल्ला अहमद में राज-सिंहासन के समीप रोता गिड़-गिड़ाता हुआ सुल्तान के पैरों पर गिर पड़ा। उसने अपनी पगड़ी उस के पैरों पर रखदी। उसने अनेक शपथें दुहराई कि वह शिवाजी से प्रतिशोध लेगा।

सुल्तान आदिलशाह और उसके सामन्त एवं मंत्रिगण शिवाजी की इन विजयों से व्यथित हो गये थे, शिवाजी का रूप अब स्वतंत्र विद्रोही द्वारा सत्ताप्राप्ति का बन चुका था। शिवाजी को दरबार में उपस्थित होने का आदेश भेजा गया। कर्नाटक प्रदेश में शिवाजी के अग्रज सम्भा-जी ने भी कुछ ऐसा ही कृत्य किया था, वे भी शिवाजी का अनुकरण करने लगे। इस सब का दायित्व सुल्तान ने शाहजी पर थोपा। उन्होंने एक ओर तो शिवाजी को दरबार में उपस्थित होने का आदेश भेजा दूसरी ओर निर्णय किया यदि शाहजी को दण्ड दिया जाय तो उनका पुत्र शिवाजी शान्ति से बैठ जायगा।

इस समय दक्षिण अर्काट में जिंजीदुर्ग को बीजापुर के सैनिक घेरे हुए थे। सैनिकों में शाहजी के भी सैनिक थे। सुल्तान ने उन पर अधिकार करने के लिये मुस्तफाखाँ को आदेश दिया। इससे पूर्व शाहजी ने मुस्ताखाँ को लिखा कि जिंजी का घेरा अब अधिक समय तक नहीं किया जा सकता। मेरी सेना संयम खो रही है, शिविर के आसपास अन्न की स्थिति विकट है, सैनिक भूख और श्रम करने में असमर्थ हो रहे हैं। मुझे अपने घर जाने दिया जाय। मुस्तफाखाँ के

पास शाहजी का यह सन्देश पहुँचा तो वह निश्चित हो गया कि शाहजी षड्यन्त्र रच रहे हैं। किन्तु वास्तविकता वही थी जो शाहजी ने लिखी थी। मुस्तफाखाँ ने बाजीराव घोरपड़े तथा जसवन्तराव आसदखानी को आदेश दिया कि वे शाहजी को बन्दी बनायें। आदेश का पालन हुआ। प्रातःकाल ही जब सूर्य की किरणें फूटी भी नहीं थी, मुस्तफाखाँ के सैनिकों ने, घोरपड़े और आसदखानी के तत्त्वावधान में शाहजी का शिविर जा घेरा। शाहजी सोकर उठे भी नहीं थे। जब वे तथ्य से परिचित हुए तो उन्होंने उनका घेरा तोड़ दिया और अपना अश्व लेकर भाग निकले। वे अधिक दूर तक नहीं निकल पाये थे कि उन्हें पकड़ लिया गया और मुस्तफाखाँ के सम्मुख उपस्थित किया। मुस्तफाखाँ ने उन्हें बन्दी बना लिया। उनकी सैन्यशक्ति छिन्न-भिन्न करदी, और उनका शिविर लूट लिया गया। अब उनकी सम्पत्ति और सैनिकों पर बीजापुरका अधिकार होगया।

शाहजी को बन्दी बनाकर अफज़लखाँ के संरक्षण में उन्हें बीजापुर भेज दिया। मुस्तफा को जिंजी की भी विजयश्री मिली। वहाँ से लगभग बीस करोड़ की सम्पत्ति मिली। यह सम्पत्ति उन्न्यासी हाथियों पर लादकर बीजापुर लाई गई। शाहजी को दो मास पैदल चलाकर बीजापुर लाये। उनकी दुर्दशा और अपमान की कथाएँ शिवाजी और जीजाबाई ने सुनीं तो दुःखी हुए। शिवाजी के सम्मुख एक बड़ी आपत्ति आ गई। पिता को बन्धन-मुक्त करायें अथवा राष्ट्र का स्वातन्त्र्य देखे। सम्भाजी कर्नाटक में सफलता के चरण बढ़ा रहे थे। बंगलौर उनके अधीन था, पिता की सम्पत्ति पर अधिकार कर लिया। बीजापुर परिषद् में कान्होंनी जेधे का अच्छा सम्मान था। उन्होंने सुल्तान को समझाया-बुझाया किन्तु सुल्तान टस से मस नहीं हुआ।

सुल्तान के पूर्व आदेशानुसार शिवाजी ने अब तक दुर्ग छोड़ा नहीं था, सुल्तान क्रुद्ध हुआ। उसने शाहजी को बन्दीगृह से बुलवाया और कहा—

"यदि तुम्हारे पुत्र वश में नहीं आये तो तुम्हें दीवार में जिन्दा चुनवा दिया जायगा।"

मरणासन्न सुलतान का आदेश सुनकर सारी परिषद् में सन्नाटा छा गया। शाहजी को इतना कठोर आदेश सुनना पड़ेगा, किसी को आशा नहीं थी।

सुलतान शिथिल अवस्था में था, उसने फिर कहा—

"शाहजी, माबदौलत एक माह का वक्त देते हैं, अगर इस बीच हमारे दुर्ग लौटा दिये तो तुम्हें छोड़ दिया जायगा।"

शाहजी ने सविनय कहा—"आलीजाह, मेरा दोष बिल्कुल नहीं है। शिवाजी को मैंने अपनी आँखों से दूर कर दिया था, उसकी माँ को भी। मैं उन्हें पत्र लिखता हूँ।"

"खत लिखो या जैसा चाहो, मगर हमारा फैसला आखिरी है। एक माह के बाद दीवार में चुन दिये जाओगे।"

सुल्तान ने अपनी आज्ञा पुनः दोहरायी।

शाहजी का पत्र जब शिवाजी को मिला तो स्तब्ध रह गये। पिता को दण्ड भोगना पड़ेगा। मेरे कारण पिता को प्राणों से हाथ धोना पड़ेगा। जीजाबाई ने सुना तो व्यथित हो उठी। स्वराज्य स्थापना का स्वप्न-भंग होता दीखा। शाहजी का व्यवहार जीजाबाई के प्रति कुछ भी रहा, पति पर उनकी अनिष्ट की कल्पना भी असह्य थी। नारी के लिये पति तो सर्वस्व है, उसके जीवित रहने में ही उसका गौरव है।

शिवाजी एकान्त में बैठे। वे कल्पना कर रहे थे, सुल्तान का आदेश कितना भीषण और कठोर है? उनकी आँखों में वह दृश्य जैसे साकार हो उठा। उनके पिताजी एक दीवार के सहारे खड़े कर दिये गये हैं। सैकड़ों सैनिक नंगी तलवारें और भाले लिये खड़े हैं कि यदि वे भागें तो सभी तलवारें और भाले उस पुष्ट और स्थूल देह में झोंक दिये जायंगे।... एक-एक इंट चुनी जा रही है, दीवार अब उनके विशाल वक्षस्थल को दबा चुकी है। ग्रीवा शेष है और.. और वे

तिलमिला उठे । विवशता भी कितनी कठोर होती है, पुत्र का जनक करुण स्थिति में फँस जाय और पुत्र दूर बैठा देखता रहे वे सोचने लगे, सिंहगढ़ लौटा दूँ और पिता को मुक्त करा लूँ ! किन्तु अन्तरतम से एक ओजपूर्ण स्वर उभरा—

"...और राष्ट्र–महाराष्ट्र ? आततायियों से मातृ-भूमि की स्वतंत्रता ? उसकी मुक्ति !"

"मुक्ति ! स्वर कक्ष में गूँजने लगा । उन्होंने अपने कानों पर हथेलियाँ रखलीं, आँखें बन्द करलीं और एक ओर पिता और दूसरी ओर राष्ट्र का स्वरूप छा गया !

अन्तःकरण विक्षुब्ध हो गया—

"पिता की रक्षा करना पुत्र का कर्त्तव्य है ।"

"और देश, और राष्ट्र ?"

"राष्ट्र महान् है, सर्वोपरि है ।"

"पुनश्चः पिता की मुक्ति अनिवार्य है ।"

शिवाजी ने निर्णय किया वे उत्तेजना में भर उठे पिता की साकार प्रतिमा उन्हें अपने कक्ष में खड़ी दिखाई दी, मानो पिता पूछ रहे थे "शिवाजी, राज्य-सत्ता का भोग पिता को बनायेगा ?"

वे विक्षिप्त से हो उठे उनके मुख से स्वर गूँजे—

"मुक्ति, पिता की मुक्ति !"

इसी बीच जीजाबाई आ गई, सईबाई आ गई । जीजाबाई के कानों में शिवाजी के कम्पित किन्तु गर्जनापूर्ण स्वर पड़े । उन्होंने प्रवेश करते ही पूछा—

"शिवा किसकी मुक्ति की कामना कर रहे हो ? किसकी मुक्ति चाहते हो ?"

जीजाबाई के स्वर में तीव्रता थी । शिवाजी ने माँ के चरण पकड़

लिये । बोला माँ··· मैं माँ का वैधव्य नहीं देख सकता । मेरे कारण माँ का सिन्दूर पुछ रहा है ।

सईबाई और जीजाबाई की आँखों में अश्रु नर्त्तन करने लगे । शिवाजी कहने लगे ।

"माँ, पर विपदा के पहाड़ नहीं ढाऊँगा ।"

"शिवा, राष्ट्र को महाराष्ट्र बनाना है न ?"

माँ के चरणों का आशीर्वाद चाहिये । माँ को सुखी देखता रहूँ ।"

"शिवा माँ क्षत्राणी है, क्षत्राणी पति के शव के साथ सती होना जानती है, शव न हो तो उसकी चरण-पादुका को लेकर ही सती होना जानती है ।"

सुनकर शिवाजी दंग रह गये, सईबाई जीजाबाई के वक्ष से लगकर फूट पड़ी ।

"यदि व्यक्ति है तो धर्म की रक्षा कर सकता है, भूमि पर पुनः आधिपत्य कर सकता है ।" सुबकते सुबकते सईबाई ने कहा ।

जीजाबाई जैसे सिंहनी बन गई थी । उन्होंने कहा—

"शिवा, सुख आत्मा की स्वतन्त्रता में है । सुख एवं शान्ति का अभ्युदय वासनाओं का दमन करने में, कामनाओं को त्यागने में है, न्यूनतम करते-करते मैंने उनका अन्त कर लिया है । शिवा, मातृभूमि भी तेरी माँ है उसके पैरों में लौह-शृंखला पड़ी हुई और तू माँ के माथे पर झूलते स्वर्ण तिलक की रक्षा कर अपयश लेना चाहता है ? असमर्थतावश समझौता करना मृत्यु तुल्य है ।"

शिवाजी के नेत्रों से अश्रुप्रवाह हो उठा वह जीजाबाई के चरणों को निर्माल्य चढ़ाने लगा । जीजाबाई विह्वल होती हुई आदेश देने लगीं—

"शिवा मातृभूमि की मुक्ति !"

"आज्ञा, माँ।"

शिवाजी और सईबाई एक बार पुनः फूट पड़े।

जीजाबाई ने फिर कहा—उनकी वाणी में ओज था, गम्भीरता थी।

"सोचो शिवा आज का दिन फिर कभी नहीं आयेगा !"

"माँ, संघर्ष ! संघर्ष ही करूँगा। युद्ध ! युद्ध ही करूँगा।"

"भवानी तुम सब की सहायक होंगी।" और जीजाबाई कक्ष से निकल गईं।

रणभेरियों का तुमुल घोष आकाश में गूँजने लगा। शिवाजी अश्व की पीठ पर रात्रियाँ काटने लगे। मातृ-भूमि की मुक्ति के लिये संकल्पों की श्रृंखला में बँधे थे। जब सम्भा ने सुना तो बंगलौर से अपनी गतिविधियाँ तीव्र कर दीं। जिजी दुर्ग की लूट में उपलब्ध बीस करोड़ की राशि के विभाजन के लिये बीजापुर और गोलकुण्डा में विवाद छिड़ गया। विवाद ने उग्ररूप धारण कर लिया। दोनों दुर्गों पर आदिलशाही सैनिकों ने शक्ति-प्रदर्शन किया, संघर्षरत हुए किन्तु विफलता ही विफलता। सम्भाजी अपने क्षेत्र में और शिवाजी अपने क्षेत्र में सफल हुए, सफलता शाहजी के पुत्रों के चरण चूमने लगी। जीजाबाई और सईबाई अपने-अपने कक्षों में बैठी मंगल कामनाएँ करने लगीं। फ़तहखाँ के नेतृत्व में पुनः सिंहगढ़ पर आक्रमण किया। शिवाजी इस समय पुरन्दर दुर्ग की व्यवस्था में निरत थे। फतहखाँ ने बेलसर और बालाजी हैवतराव ने शीरवाले के मराठे सैनिक स्थलों पर आधिपत्य कर लिया। किन्तु शिवाजी के सैन्याध्यक्ष ने बीजापुर के सैनिकों को मारकाट कर भगा दिया। फतहखाँ ने नेतृत्व संभाला उसे भी पराजय का मुँह देखना पड़ा। जब इन पराजयों की सूचना आदिलशाह को मिली तो वह तिलमिला उठा। उसने आदेश दिया, 'शाहजी को दीवार में चुनवा दिया जाय।'

शाहजी गम्भीर रूप धारण किये सैनिकों के साथ बधस्थल की ओर चल दिये उनके पैरों में भारी लौह-शृंखलाएँ थीं। ईंटें शाहजी की छाती से कुछ ऊपर तक चुनी हुई थीं। वे खड़े हो गये। राजगीरों ने अपना कार्य आरम्भ किया। यह कार्य कल्याण के सूबेदार मुल्ला-अहमद के नेतृत्व में हो रहा था। चुनी जाने वाली ईंटें शाहजी के समस्त शरीर को घेर चुकीं थी। पैर बँधे थे, हाथ पीछे बँधे थे। अब प्राणों को जाने में कितना बिलम्ब था, कुछ ही क्षण, पल।

मुल्ला अहमद ने शाहजी से कहा—"खुदा के बन्दे, अपने भगवान् को स्मरण करलो !"

शाहजी गर्जे—"मुल्लाजी वीरों की मृत्यु एक बार ही होती है। मेरे भगवान् हर घड़ी मेरे साथ रहे हैं। सुल्तान का कर्म निन्दनीय है। जीवन का अधिकांश समय आदिलशाही कीर्ति बढ़ाने में निकाला है। मैं निर्दोष हूँ।"

"किन्तु सुल्तान का हुक्म......।"

इसी समय पीछे से एक ऊँचा स्वर उठा—

"सुल्तान आलीजाह का हुक्म यह है।"

मुल्ला अहमद की पुत्रवधु काले बुरके से ढकी अपने श्वसुर के सामने आकर खड़ी हो गई।

"अब्बाजान नेक बेटे के नेक बाप को फना नहीं किया जा सकता।"

"यह लीजिये सुल्तान का नया हुक्म !"

मुल्ला स्तब्ध रह गया, शाहजी को कोई देवी चमत्कार लगा।

सैनिक अवाक् रह गये। सुल्तान का आदेश देकर युवती महरुन्निसा उलटे पाँव लौट गई थी। शिवाजी ने उसकी रक्षा की थी मुल्ला को स्मरण था। शाहजी पुनः सुल्तान के समीप आये। मुल्ला अहमद नवायत उनके साथ था। सुल्तान ने मुल्ला अहमद से कहा—

"शिवाजी को बुला लो, माबदौलत यकीन दिलाते हैं, हमारा आखिरी वक्त है हमारा जिस्म नाकाम हो चुका है, खुदा के घर की

तैयारी करनी है। महरुन्निसा ने हमारी आँखें खोलदी हैं, शिवाजी नेक दिल इन्सान है। महरुन्निसा की फरियाद हमसे ठुकराई नहीं जा सकी। बस समझौता ! समझौता !"

कुछ ही दिनों में शिवाजी बीजापुर आये, शिवाजी को आदिलशाह की भावनाओं से सूचित कर दिया। जब वे आए तो उनके अंग-रक्षक भी साथ थे। शिवाजी को मुल्ला अहमद के यहाँ अतिथि के रूप में रखा गया। शिवाजी ने महरुन्निसा का आभार स्वीकार किया। उसे भेंट दी, जैसे एक भाई अपनी बहिन के लिये सौगात लाता है, किन्तु ये सौगातें बीजापुर के बाजारों से ही खरीदी गई थीं।

समझौता हो गया। बीजापुर के सुल्तान, शाहजी और शिवाजी बैठे थे। सम्भाजी भी उसी क्षण आ पहुँचे। शाहजी ने आदेश दिया—

"बंगलौर कन्दर्पी दुर्ग सहित, चित्तल दुर्ग और उसके चालीस मील दूर तक की सीमा सम्भाजी छोड़ दें। शिवाजी कोंडाना दुर्ग पर से अपना अधिकार हटालें।"

दोनों पुत्रों ने पिता की आज्ञा मानली। सुल्तान ने स्वीकार कर लिया और शाहजी को उनकी समस्त चल-अचल सम्पत्ति और सम्मान के प्रतीक सम्मान-परिधान उन सबको भेंट किये गये। राजनीति का चक्र प्रबल होता है, सुल्तान ने कहा—"शाहजीराजे, बीजापुर का बारिस ५ मई को पैदा हुआ है, उसी की खुशी में···।" आज १६ मई १६४६ है।

सब ने सुल्तान को बधाइयाँ दीं।

ग्यारह

शिवाजी बीजापुर से लौट आए किन्तु सुल्तान का मन कुढ़ता ही रहा। उसने जो कुछ किया उससे उसको सन्तोष नहीं था। जो कुछ निर्णय लिये गये थे वे परिस्थितिवश ही थे, वह चाहता तो कुछ और ही था। शिवाजी में विद्रोह के सूत्र उसे स्पष्ट दिखाई दे रहे थे। सुल्तान को उनमें विद्रोह की खुली गंध आ रही थी। अब वह सोच रहा था कि शिवाजी से किस प्रकार प्रतिशोध ले। घर में आये शिकार को उसे छोड़ कर उसे आत्मग्लानि हो रही थी। तब उपाय क्या है? बीजापुर की सीमाओं पर उसे आँच ही आँच दीख रही थी। वह देख रहा था, यदि अग्नि ने अधिक उग्रता धारण कर ली तो बीजापुर की रही सही प्रतिष्ठा का भी लोप हो जायगा। वह स्वयं तो पक्षाघात से पीड़ित था ही। इस काल उसके कोई समर्थ सन्तान भी नहीं थी जो उसके सामने और फिर बाद में शिवाजी का प्रतिरोध कर सके। तो अब वह क्या करे? सुल्तान शैया पर लेटे-लेटे सोच रहा था। उसका मन विकृत होता चला जा रहा था। विचार-सागर में वह कभी डूब रहा था तो कभी तैर रहा था। इसी समय सुल्तान के एक कर्मचारी ने कक्ष में प्रवेश किया, उसे देख उसको समाधान मिल गया। सुल्तान ने उसको अपने समीप बुलाया और कहा—

"शामराज, तुम्हें तीन हजारी मन्सब का पद और पाँच गाँव जागीर में·········

"आलीजाह, इतनी बड़ी उदारता !"

शामराज ने जो कुछ सुना उस पर विश्वास नहीं हुआ ।

"तुम्हें एक काम करना होगा, इस इनायतबख्शी की एवज में ।"

"आकाश के तारे तोड़ लाऊँगा आलोजाह ।" शामराज ने प्रसन्नता में भर कर कहा ।

"यकीन है, सुनो···हमारे और नजदीक आजाओ ।"

शामराज ने अपना कान, सुल्तान आदिलशाह की उदारता सुनने के लिये बढ़ा दिया । कुछ फुसफुसाहट ही कक्ष की भित्तियों तक पहुँच सकी किन्तु शामराज ने सब सुन लिया, उसके अन्तर्मन ने सुन लिया । हर्ष बिखेरते हुए उसने कहा—

"आलीजाह आठ दिन के भीतर ही भीतर बस ।"

"शाबास शामराज, इधर आओ ।"

शामराज सुल्तान की ओर झुका तो पक्षाघात से पीड़ित सुल्तान का हाथ उसकी पीठ थपथपा रहा था । मानो उसके आश्वासन देने मात्र से सुल्तान की मनोकामनापूर्ण हो गई हो । उसने कहा— "शामराज जितने होन की जरूरत समझो खजाने से लेते जाओ । लो यह हुक्मनामा ।

शामराज ने हुक्मनामा लिया और सिर झुकाकर चला गया । सुल्तान की आकृति विद्रूप हो उठी । उसने न जाने क्या सोचा, अपना पैर उठाने का असफल प्रयास किया न उठा तो दोनों हाथों का सहारा लिया परन्तु पैर अब भी वहाँ का वहीं जमा रहा । इसी अवसर पर बड़ी सहिबा आ गईं, उन्होंने सुल्तान को पैर उठाते देखा तो पूछ बैठीं—"क्या पैर कुछ हरकत करने लगा है हुजूर ?"

"ऐसे करम कहाँ बड़ी साहिबा ?" सुल्तान ने निराशा भरी दृष्टि अपनी बड़ी बेगम पर डाली।

"बन्दे के नेक इरादों पर अल्लाहताला का बड़ा करम होता है।"

सुल्तान चौंक पड़ा। "नेक इरादों पर खुदा रसूल का करम…" सुल्तान चुप हो गया। उसका ध्यान शामराज की ओर चला गया।

शामराज और दस सैनिक जावली की ओर तीव्रगति से दौड़े जा रहे थे। शामराज भविष्य की आशाओं में खोया हुआ था। वह सुल्तान आदिलशाह की परिषद् में शीघ्र ही तीन हजारी मन्सबदारों में बैठेगा। उसकी जागीर होगी और उसकी व्यवस्था के लिये किसी देशमुख को रख देगा।…और विचारों ही विचारों में मार्ग कट गया। वह जावली दुर्ग के सामने जा पहुँचा तो ध्यान आया, इन सैनिकों को कहीं पीछे ही छोड़ना था किन्तु अब ? अब तो यात्रिशाला में ही टिकाने का अवसर रह गया था। उसने एक सैनिक को कान में कुछ समझाया। सैनिक अश्व पर आरूढ़ हो यात्रिशाला की ओर चल दिया, उसके पीछे शेष सैनिक बढ़ते गये।

शामराज चन्द्रराव मोरे से भेंट करने आया था। सन्ध्या ढल रही थी, और अन्धकार आसपास के भवनों पर गिर रहा था। उसने रायगढ़ के द्वार-रक्षक से पूछा—"राजा मोरे यहीं हैं या…"

"यहीं हैं।" सैनिक खड़ा हो गया। उसके हाथ में लम्बा भाला था।

"तो सूचना की व्यवस्था कीजिये हम आए हैं।"

"आप आए हैं, आप कौन हैं, कहाँ से आए हैं ?"

"अरे, यह भी बताना होगा। अच्छा-अच्छा, तुम भी पहचानने लगोगे……तुम्हारे राजा तो पहचानते हैं हमें।"

"क्या कहूँ राजा साहब को ?"

"राजा साहब से कहो—अच्छा हम ही कह देंगे। तुम तो सूचना कर दो।"

"पर क्या सूचना दी जाय ? एक अनजान व्यक्ति मिलना चाहता है ? इतना तो पर्याप्त नहीं होगा।"

"अनजान व्यक्ति।" वह चौंका ! उसने सोचने के उपरान्त कहा—

"बीजापुर से आया हूँ, सुल्तान आलीजाह बीमार हैं !"

"अच्छा-अच्छा भेजता हूँ किन्तु लगते विलक्षण हो।"

द्वार-रक्षक ने एक अन्य सैनिक को ऊपर भेज दिया।

"विलक्षण तो लगूँगा ही कल तक सुल्तान के पैरो की मालिश करता था, कल तीन हजार सिपाही मेरे संकेत पर नाचेंगे।" उसने मन ही मन कहा।

शामराज अब भी मन्सूबे बाँध रहा था कि सैनिक लौट आया। उसने गर्वीले स्वर में कहा—"चलिये जनाब।"

चन्द्रराव मोरे एक तकिए के सहारे बैठा हुआ था। दो चार-दासियाँ उसके पास थीं। उसके हाथ में मदिरापात्र था। लाल-अंगूरी मदिरा देखकर शामराज का मन ललचाया। जब कभी किसी आगन्तुक पर सुल्तान की कृपा हो जाती तो उसे पीने को मिल जाती थी।

चन्द्रराव ने पूछा—"बीजापुर से आए हो ? सुल्तान आलीजाह की हालत कैसी है ?"

"ठीक है, राजासाहब !"

"ठीक है ! आपने तो कहलवाया था कि सुल्तान की हालत गंम्भीर है।" विस्मित होकर उसने कहा।

"राजा साहब आप तक जल्दी से जल्दी पहुँचना था एक खास काम में आपकी सहायता चाहिये। सुल्तान ने भेजा है ?"

चन्द्रराव को वह संदिग्ध लगने लगा। उन्होंने पूछा—

"प्रमाण ?"

"प्रमाण !"

शामराज अपने वस्त्रों को टटोलने लगा।

"प्रमाण ! प्रमाण तो भूल आया राजासाहब, आप तो जानते ही हैं जल्दी का काम शैतान का होता है। राजासाहब बात यह है...... सुनें तो......" शामराज ने कहने की उत्सुकता प्रकट की।

"आदमी विलक्षण लगते हो ?"

"सुल्तान के पास रहते-रहते कुछ सीख गया हूँ राजासाहब वरना......"

"सुल्तान के पास अरे, हाँ देखा था एक बार तुम्हें।" चन्द्रराव शामराज को पहचान ने का प्रयत्न करने लगे।

"अवश्य पहचानते होंगे। मैं तो सुल्तान का खास आदमी हूँ। सुल्तान हर घड़ी मुझे अपने पास रखते हैं।" उसने गर्व से कहा।

'ठीक है, ठीक है प्रयोजन पर आओ।"

"तो सुनिये"

और वह तकिये का सहारा लेते हुए, चन्द्रराव के कान में कुछ कहने लगा। चन्द्रराव के मुख पर प्रफुल्लता छाने लगी। शामराज प्रकट में बोला–"काँटे से काँटा ! बस कल ही सुनेंगे, राजासाहब का काँटा निकल गया।" चन्द्रराव मोरे ने शामराज का हाथ पकड़ कर उसका समर्थन किया और पूछने लगे—"इस समय है कहाँ ?"

"इसी जावली प्रदेश में, सीमा के पास ! मावलों को आपके विरुद्ध करने लगे हैं।"

"हमारा सहयोग है, शामराज......"

शामराज की प्रसन्नता का बाँध फूटा चला। उसने कहा—"दस सैनिक लेकर चला था, सोचा सन्त तुकाराम के अभंग सुनता जाऊँ ? ग्राम में।

"तब पचास पर्याप्त होंगे ?"

"पचास ! और दस साठ। पूरे सौ की व्यवस्था कर दीजिये।"

"ठीक है।"

शामराज उठ खड़ा हुआ । वह द्वार से बाहर पहुँचा कि सौ सैनिक उसकी प्रतीक्षा में थे । आगे वाले सैनिकों के पास मशालें थीं । अब वह एक सौ दस का अधिपति था । वह मार्ग पर दौड़ रहा था । दूर पर उसे प्रकाश दिखाई दिया । उसका लक्ष्य सम्भव है वहीं पहुँचने का था । उसने कहा—"मशालें बुझादो ।"

तुरन्त मशालें बुझ गईं । शामराज उस गाँव की ओर बढ़ने लगा, उसके पीछे दूसरे अश्वारोही । वे पचास-साठ पग ही बढ़े होंगे कि उन्हें झाड़ियों में फुस-फुसाहट सुनाई दी । शामराज चौंका । एक स्वर उठा – "यही है शामराज पकड़ कर बाँध लो !"

शामराज घबराया उसे सैकड़ों सैनिकों ने घेर लिया । संघर्ष छिड़ गया । मारकाट भागने-दौड़ेने के स्वर उभरने लगे । चन्द्रराव के सैनिकों को भी भागते ही बना, कुछ मारे गये, कुछ आहत हुए । शामराज धरती चाट रहा था, उसके व्रण से रक्त बह रहा था । किसी ने उसकी छाती पर अपना खड्ग रख दिया, सम्भवतः दल का नायक था । उसने पूछा "कहाँ जा रहे थे शामराज ?"

"मेरा नाम तो शामराज नहीं रामदास है ।" वह घबरा रहा था ।

"रामदास, बड़ा सन्त बन रहा है, सुल्तान के पैरों की मालिश करने वाला शामराज शिवाजीराजे के बध के लिये आया था ।" नायक ने कहा ।

वह विचलित हो उठा, भय के मारे उसके प्राण निकले जा रहे थे ।

नायक ने कहा—"शामराज, शिवाजीराजे की आज्ञा है, तुम्हें प्रायश्चित का अवसर दिया जाय । जाओ अपने घर चले जाओ ।"

शामराज की जान में जान आई, वह उठा और शीघ्रतापूर्वक बीजापुर की ओर चल दिया उसके दसों सैनिक बन्दी बना लिये गये ।

जब शामराज के सैनिक रामगढ़ की यात्रिशाला में ठहरे थे तब शिवाजी के गुप्तचर वहाँ पहुँच गये । उन्हें शंका हुई और शिवाजी

के पास सूचना पहुँचादी गई थी। उस रात्रि शिवाजी तुकाराम के दर्शन करने नहीं जा सके।

चन्द्रराव मोरे ने सुना तो दाँत पीसकर रह गया।

प्रभात में शिवाजी ने अपने मंत्री सोनाजी पन्त से परामर्श किया जावली चन्द्रराव मोरे का व्यवहार उन्हें अत्यन्त घृणित लगा। चन्द्रराव यदि मार्ग पर आजाय तो महाराष्ट्र में अरुणोदय शीघ्र हो सकता है। इस निष्कर्ष पर शिवार्जा और सोनाजी पंत एक मत थे। शिवाजी ने कहा—

'हमारी नव प्रतिष्ठापित शक्ति और मोरों की पुरानी पीढ़ी में संघर्ष न हो यही चेष्टा करनी चाहिये मंत्रिवर ! हमें दुःख है, हमारे स्वजातीय ही हमारे उत्कर्ष का विरोध करने खड़े हो गये हैं। चन्द्रराव सुल्तान से मिला हुआ है यदि वह अब भी सीधे मार्ग पर आजाय तो संघर्ष टल सकता है।"

सोनाजी पन्त शिवाजी से विदा लेकर चन्द्रराव के पास पहुँचे।

महाबलेश्वर के पश्चिमी भाग में जावली प्रदेश था। बीजापुर के प्रथम सुल्तान ने अनुग्रहपूर्वक यह प्रदेश चन्द्रराव मोरे के पूर्वजों को अनुदान में दे दिया था। चन्द्रराव मोरे अपने आतंक से सम्पन्न एवं ग्रामीणों को जा धरदबाता और धन-सम्पत्ति उठा लाता। वह राजा कहलाता था किन्तु उसका कर्म दस्युवृत्ति का था। शिवाजी के उत्कर्ष से वह ईर्ष्या करने लगा। उसने शामराज को शिवाजी की हत्या के षड्यन्त्र में सहायता दी। शिवाजी फिर भी नहीं चाहते थे कि उसे दण्ड दिया जाय। सन्त रामदास ने भी उसे अवसर दिया कि वह शिवाजी के अनुष्ठान में योग दे किन्तु उसने स्वीकार नहीं किया। जावली में समर्थ गुरु रामदास ने अपने श्रद्धालुओं को आदेश दिया कि जब कभी शिवाजी जावली पर आक्रमण करें उन्हें पूरा सहयोग दें। समर्थ रामदास भी जानते थे कि जब तक जावली सुल्तान का पक्षधर बना रहेगा, शिवाजी की कामना पूरी नहीं होगी।

सोनाजी पन्त जब चन्द्रराव के समीप पहुँचे तो वह अपने मंत्रणा-कक्ष में बैठा था । सुरापान चल रहा था । यह देखकर सोनाजी पन्त को दुःख हुआ, इच्छा हुई मोरे से कोई सम्भाषण न किया जाय किन्तु यदि वे लौट जाते तो वे जिस लक्ष्य से आए थे वह पूरा कैसे होता ? शिवाजीराजे का प्रस्ताव कौन रखता ? अन्ततः चर्चा चली । पंत ने निवेदन किया—

"शिवाजीराजे का प्रस्ताव है, जावली नवराष्ट्र के निर्माण में सक्रिय योग दे ।"

"युद्ध की धमकी लेकर आए हैं पन्तजी ?" मोरे ने सदर्प कहा ।

"मोरे परिवार और शिवाजी भोंसले परिवार के पारस्परिक सम्बन्ध भी हैं, सुल्तान बीजापुर के मुँह की ओर नहीं देखना पड़ेगा राजा साहब ।" पन्त ने कहा

"उस स्थिति में जावली को शिवाजी के सामने घुटने टेकने होंगे । एक शूद्र के सम्मुख चन्द्रराव गिड़गिड़ायेगा ?" उसके कथन में घृणा झलक उठी।

"शिवाजीराजे मालव प्रदेश में स्वराज्य की स्थापना कर स्वधर्म का उत्कर्ष देखने का संकल्प ले चुके हैं। आप भी इस पुण्य कार्य में अपना महत्त्वपूर्ण योग दें । यही निवेदन करने आया हूँ ?"

"योग दूँ, मैं उस लुटेरे को जो शाही खजाने लूटता रहा है ।"

"यह राज्य हमें भगवान् शंकर की कृपा से उपलब्ध हुआ है, लूट में नहीं ।" पंत ने पुनः कहा, "तुम अपने को राजा मत कहो शिवाजीराजे का आदेश है तुम हमारे और बीजापुर के मध्य में उलझनें बढ़ा रहे हो ।"

"शिवाजी कोई राजा नहीं है । वह तो कल का छोकरा है । घर में बैठकर राजा कहने से कोई राजा नहीं बन जाता । जावली की शक्ति को पहचानता नहीं शिवाजी । धोके-धड़े से दुर्गों पर आधिपत्य कर लेने से स्वराज्य—नवराष्ट्र की स्थापना नहीं हो जाती । हम राजा

हैं, सुल्तान ने हमें राजा की उपाधि से अलंकृत किया है। सिंहासन पर बैठने का अधिकार और मोछेल देकर, हमारे वंश को गौरवान्वित किया है। महाबलेश्वर भगवान् की कृपा से हमारी सात पीढ़ियाँ इस सम्मान को भोग रही हैं।"

"बाजीराव मोरे, आततताइयों ने सदैव छल और विश्वासघात के व्यापार से भारत भूमि को पदाक्रान्त किया है। हमारी पारस्परिक फूट ने हमारा गौरव खण्डित किया है। जननी जन्मभूमि को लांच्छित किया है। स्वार्थ के टुकड़ों अथवा वैभव-योग के लोभ से हमने अपना ही विनाश किया है। मोरे-पूर्वजों को राजा का पद उनकी चाटुकारिता से मिला है। यह भिक्षाटन है। जिसे चन्द्रराव मोरे लूट की उपलब्धि कहते हैं वह तो शक्ति-बल का द्योतक है, उसका पुरस्कार है। शिवाजी ने किसी असहाय ग्राम को नहीं लूटा। शक्ति से ही राजनीति जीवित रहती है। शक्तिहीन व्यक्ति अथवा राज्य उत्कर्ष का मार्ग ग्रहण नहीं कर सकते। आदिलशाही राज-परिषदों में सुल्तानों की कृपा के लिये गिड़गिड़ाते रहकर कब तक इस जावली की रक्षा कर सकेंगे? चन्द्रराव मोरे सोचिये, आज महाराष्ट्र को एकसूत्र में बाँधकर रखने की आवश्यकता है। जावली की नीति से मराठों का, देश का अभ्युदय नहीं होगा। स्वतंत्र महाराष्ट्र ही जाति, धर्म, संस्कृति की मर्यादायें स्थिर रख सकेगा। आदिलशाही राज्यपाल के सह-मित्रण स्वरूप आप आँखें नहीं खोल रहे, आँखें खोलिये, शिवाजीराजे की स्वाधीनता-भावना का आदर कीजिये। अपने छोटे से अस्तित्व की रक्षा के लिये गठबन्धन मत कीजिये। आप सोच रहे हैं, भोंसलों की शक्ति के उत्कर्ष में मोरे परिवार का ह्रास छिपा है। नहीं? स्मरण रहे! जावली अपना स्थान स्थिर रख सकता है यदि वह शिवाजीराजे का सहयोगी बन जाय। शिवाजीराजे अपने भाई के विरुद्ध शस्त्र नहीं उठाना चाहते।"

मंत्रिवर सोनाजीपन्त ने चन्द्रराव मोरे को एक प्रवचन दे डाला। चन्द्रराव जल-भुनकर रह गया। यदि वह चाहता तो स्वयं ही उनके टुकड़े

टुकड़े कर सकता था किन्तु उसने सोचा शिवाजी से संघर्ष टालना ही उचित है। उसने ऊपरी मन पंत को आतंकित करने का प्रयास किया। उसने सगर्व कहा—

"सोनाजी पंत, जावली की शक्ति पहचानते नहीं तभी इतना कह रहे हो ! जावली पर यदि शिवाजी आये तो वे जीवित बच कर नहीं जा सकेंगे। एक-एक सैनिक यहाँ धराशायी होगा। जावली के खड्ग बहुत दिन से प्यासे हैं। शीघ्र आइये, कल आने वाले हों तो आज ही आइये।"

"बाजीराव मोरे, जावली को दुर्दिन नहीं देखने पड़ें। यह भावना लेकर उपस्थित हुआ था किन्तु चन्द्रराव ने शिवाजीराजे के प्रस्ताव को ठुकरा दिया। मैं अपनी भावनाओं को छोड़े जाता हूँ, भगवान् शंकर तुम्हें सुबुद्धि दें।"

सोनाजीपंत निराश लौट गये। उनके साथ लगभग तीन सौ अंगरक्षक थे। किन्तु दुर्ग में केवल पन्द्रह ही गये थे। जावली प्रदेश में भोंसला-सैनिकों का जाल बिछा दिया गया, शिवाजी का आदेश था। हमें प्रतिपल सतर्क रहने की आवश्यकता है जब वे लौट रहे थे तब उन्हें मार्ग पर मराठे सैनिकों के कई दल मिले। यदि जावली में सोनाजी पंत के साथ थोड़ा भी, दौत्यकर्म के विपरीत आचरण होता तो उसी समय चन्द्रराव मोरे और भोंसलों में ईंट से ईंट बज जाती। चन्द्रराव का यह सौभाग्य ही था। उस घड़ी संकट टल गया, सम्भवतः इसका कारण उसकी भीतरी शिथिलता थी, जो उसके आचरण के कारण तेजस्विता खो बैठी थी।

इस समय शिवाजी अपने अन्य मंत्रियों से परामश कर रहे थे। उनके पास नारोजी पन्त हणमन्ते, नेताजी पालसकर, बल्लाल कोर्डे बैठे थे। सोनोजी पन्त ने आकर विगत बताई तो शिवाजी की आँखों से स्फुलिंग निकलने लगे। उनके मुँह से निकला "जब तक मोरे जीवित

है हमारी सफलता संदिग्ध ही है। हमें चाहे उसकी हत्या ही क्यों न करनी पड़े, रास्ते से इस काँटे को दूर करना ही होगा।"

नेताजी पाल्सकर ने शिवाजी का समर्थन किया, "राष्ट्र की स्वाधीनता की उन्नति में बाधक व्यक्ति राष्ट्र का शत्रु है। उसे दण्ड दिया जाना ही उपयुक्त है।"

सोनोजी पन्त ने कहा—"चन्द्रराव शिवाजीराजे का अपमान करने पर तुल गया है उसने हमारे राष्ट्रनायक की हत्या का षड्यन्त्र रचा। यदि हमारे गुप्तचर सतर्क न होते तो शत्रुओं का षड्यन्त्र सफल होने में कोई शंका नहीं थी।"

"चन्द्रराव की जावली का मटियामेट करके मोरे को बन्दीगृह में रख दें। यही उचित है।" हणमन्ते ने अपना मन्तव्य प्रकट किया।

शिवाजी आवेश में खड़े हो गये। अपमान के घूँट वे कैसे पी थे सकते। उन्होंने कोर्डे से कहा—"बल्लाल कोर्डे इस बार आप जाइये, उसे समझाइये। यदि नहीं मानता तो फिर उसकी हत्या······वे आवेश में टहलने लगे। उपस्थित समुदाय में स्तब्धता छा गई। सभी एक दूसरे को देख रहे थे। शिवाजी बल्लाल के समीप आए। वे खड़े हो गये। "जब तक चन्द्रराव जीवित है उसका राज्य महाराष्ट्र के विकास में बाधायें ही डालता रहेगा। उसका राज्य महाराष्ट्र में मिल जायगा तभी हमारा स्वप्न सिद्ध होगा। कोर्डे तुम पर हमें विश्वास है। अब शान्ति से कार्य सफल नहीं होगा। प्रतीक्षा की घड़ियाँ बीत चुकी हैं। मैं तुम्हें अपने सम्पूर्ण अधिकार देता हूँ, अब हमें शठंशठे समाचरेत् की नीति अपनानी होगी। प्रभु को अपने साथ ले जाइये। दुर्ग के भीतर जैसे भी हो हमारे सैनिक प्रवेश कर जाँय।" शिवाजी ने उनके स्कन्ध पर हाथ रखकर फिर कहा "चन्द्रराव के लिये तुम्हारा कटार ही पर्याप्त है।"

कोर्डे की मुद्रा गम्भीर हो गई। उन्हें अपनी आँखों में चन्द्रराव का काल दिखाई दिया। उन्होंने कहा—"भगवान शंकर सहायक होंगे।"

सोनोजी पन्त ने बताया—"चन्द्रराव प्रायः मदिरा-पान करता रहता है। उसके पास, अंगरक्षक नहीं रहते। वह मदिरा और कामनियों से ही घिरा रहता है।"

प्रभु सवा सौ सैनिकों के साथ जावली जा पहुँचा। सेनानायक ने चन्द्रराव के पास सूचना भिजवाई, शिवाजी ने भेंट भेजी हैं।"

चन्द्रराव समझा शिवाजी हत्या से डर गये हैं, इसलिये भेंट भेजी होगी। उसने प्रभु को दुर्ग-प्रवेश की अनुमति दे दी।

प्रभु अपने सैनिकों के साथ थालों में रेशमी वस्त्र और फल तथा मिष्ठान्न लेकर चन्द्रराव के पास पहुँचा। मोरे ने भेंट स्वीकार की। प्रभु को विदा करना आवश्यक समझा कि कोर्डे उनके समीप पहुँचे। वे भी सैनिक वेश में दुर्ग में पहुँच चुके थे। कोर्डे वेश परिवर्तन किये हुए थे। उन्होंने चन्द्रराव से निवेदन किया—"शिवाजीराजे ने एक प्रस्ताव भी आपके विचारार्थ भेजा है।"

"अच्छा, कहिये ?"

"एकान्त हो तो शुभ रहेगा।"

"आइये।"

चन्द्रराव कोर्डे को अपने साथ ले गया। उसने तकिये के सहारे बैठते हुए कोर्डे से पूछा—"कहिये शिवाजी का क्या रहस्य है ?"

प्रभु ने अपने सैनिक इस-उधर उचित स्थानों पर खड़े कर दिये और सारी व्यवस्था समझा दी।

"रहस्य तो कुछ नहीं राजा साहब··· सुल्तान बीजापुर से शिवाजी का समझौता हो गया है अब आप भी अपनी कार्यवाहियाँ रोक दें।"

"अभी थोड़े दिन पूर्व नीलोजी भी यही कहने आए थे।"

"राजा मोरे, शिवाजी की इच्छा है आप अपनी कन्या का विवाह उनके साथ कर दें ।"

"उस शूद्र के साथ ! उसे इतना घमण्ड हो गया है ?" चन्द्रराव उत्तेजना के स्वर में बोला ।

"चन्द्रराव, स्वामी की प्रतिष्ठा के विरुद्ध एक शब्द भी सुनना अधर्म है ।" कोर्डे गरज उठे ।

उनकी दृष्टि रह रह कर द्वार की ओर जाती थी । द्वार पर कोई नहीं था ।

कोर्डे ने कृपाण खींच कर चन्द्रराव के पेट में घुसेड़ दी । वे चिल्लाये तो उनका मुख अपने हाथ से बन्द कर दिया । चन्द्रराव का भाई सूर्यराव उनकी सहायता के लिये आया । कोर्डे ने उसके पार्श्व को भी चीर डाला । दुर्ग में हलचल मच गई । रक्त-रंजित हाथ पोंछ कर कोर्डे अपने सैनिकों में जा मिले । प्रभु के सैनिक पीछा करने वाले सैनिकों से जूझते, उन्हें धकेलते द्वार पार कर गये । सभी सैनिक सुरक्षित दूर जंगल में निकल गये और जिसने उनका पीछा किया वह लौटकर दुर्ग में नहीं पहुँचा ।

सफलता की सूचना पाकर शिवाजी भी तुरन्त जा धमके । नेतृत्व-विहीन सैनिकों ने लड़ना व्यर्थ समझा, मोरे परिवार का हनुमन्तराव कुछ सैनिकों के साथ सम्मुख आया किन्तु उसे भी मृत्यु की गोद में सुला दिया गया ।

शिवाजी ने लगभग छह सप्ताह के भीतर ही मोरेवंश का विनाश कर समस्त जावली पर अधिकार कर लिया । जावली से दो मील दूर प्रतापगढ़ का दुर्ग स्थापित किया गया और उसमें अपनी अधिष्ठात्री देवी भवानी की मूर्ति बड़े धूमधाम से प्रतिष्ठित कराई ।

मोरे परिवार के पराभव से शिवाजी की धाक प्रस्थापित हो गई । मावल प्रदेश के निवासी तथा दूसरे लोगों ने उन्हें राजा स्वीकार कर लिया ।

उनके राजकीय व्यापार समुचित विधि-विधान से चलने लगे। राजकीय मुद्रा की कल्पना की गई। शिवाजी को अपने राजनीतिक गुरु आचार्य दादा कोंडदेव की स्मृति आ गई। उन्होंने शिवाजी को एक आशीर्वचन दिया था "प्रतिपच्चन्द्ररेखेव वर्धिष्णुर्वि वंदिता।" वही उन्होंने राजमुद्रा पर अंकित कराया—

प्रतिपच्चन्द्ररेखेव वर्धिष्णुर्विवंदिता।

शाह सूनोः शिवस्यैषा मुद्रा भद्राय राजते।।*

नवरात्र की स्थापना हुई, धर्मनिष्ठ व्यक्तियों उनका पूजन वन्दन किया। शिवाजी ने विजयादशमी के दिन राजगढ़ के समीपवर्त्ती शिवापट्टन का सीमोल्लंघन बड़ी धूम-धाम से किया। जीजाबाई साथ थीं। मंत्रिपरिषद् के अतिरिक्त अनेक सम्भ्रान्त व्यक्ति उस समारोह में सम्मलित हुए। भगवा गगन मण्डल में लहरा रहा था। शिवाजी ने खड़े होकर उसे नमन किया और घोषणा की—सामन्तगण एवं संभ्रान्त नागरिको! हम नवीन राज्य की घोषणा करते हैं—राजगढ़ राजा का, प्रतापगढ़ जीजाबाई का। यह हमारा राष्ट्रध्वज है हम संकल्प लेते हैं, मातृभूमि की सेवा और स्वराष्ट्र की भावना की पूर्ति के लिये अपना सर्वस्व न्यौछावर कर देंगे। आतताई को दण्ड देंगे। साथ ही हमारा प्रत्येक सैनिक, कर्मचारी और सामन्तगण स्मरण रखे, हम सब धर्म और मतावलम्बियों की भावनाओं को समादर दें। किसी भी धर्म विशेष के प्रति हमारी दुर्भावना नहीं है। न्याय सबके लिये समान है। समस्त नारी-समाज को हम वही स्थान देते हैं जो हम अपनी माता, भगिनी, पुत्री, पुत्रवधू को देते हैं। नारी-सम्मान और अस्पृश्यता

---

* अर्थात् यह मुद्रा शाहजी के पुत्र शिवाजी की है, जो प्रतिपदा की चन्द्रकोर के समान छोटी है, पर अहर्निश उत्तरोत्तर बढ़ती जाकर जगत् द्वारा पूजित होने वाली है, तथा यह लोक-कल्याण के लिये निर्मित हुई।

निवारण हमारी समाज-व्यवस्था के मेरुदण्ड होंगे। इस नवीन राज्य का प्रत्येक सैनिक जहाँ भी प्रवेश करे कर्त्तव्य-भावना के प्रति निष्ठावान् रहे। प्रत्येक सैनिक संघर्ष करते समय अथवा विजेता होकर किसी प्रदेश या स्थल में ग्रथवा अन्य किसी रूप में प्रवेश करे तो वह मंदिर-मस्जिद को अन्तर की दृष्टि से नहीं देखे। कुरान ग्रथवा अन्य धर्म-ग्रन्थ चाहे व किसी वर्ग से सम्बन्धित हों। सबको पूर्ण सम्मान दे। प्रत्येक व्यक्ति स्वयं अनुशासन में रहे और उच्छृङ्खल तत्त्वों के विघटन के लिये कृत संकल्प रहे।"

शिवाजी ने एक गम्भीर तेजस्वी दृष्टि उपस्थित समुदाय पर डाली। लोगों को शिवाजी देवदूत से लगे। सबने एक स्वर से उच्च स्वर में हर्ष प्रकट किया। शिवाजीराजे ने स्वयं क्षत्रिय कुलावतंस का विरुद धारण किया। मोरोजी पन्त को प्रधान मंत्री के पद पर प्रतिष्ठित किया। उपस्थित समुदाय ने शिवाजी का जयघोष निनादित किया।

शमीवृक्ष की पत्तियों का पूजन हुआ। मंत्रिगण तथा सैनिकों को स्वर्ण वितरित किया गया। इसी अवसर बहिरजी नायक शिवाजीराजे के सम्मुख उपस्थित हुए। बहिरजी गुप्तचर विभाग के अध्यक्ष थे। वे गुप्त से गुप्त समाचार संग्रह करने में अत्यन्त प्रवीण थे। उन्होंने सादर निवेदन किया—

'क्षत्रिय कुलावतंस शिवाजीराजे भोंसले ! 'बीजापुर से आया हूँ।

शिवाजी के विरुद धारण करने की सूचना भी उनके पास तत्काल पहुँच गई, यह जानकर सबको विस्मय हुग्रा। शिवाजीराजे मुस्कराते हुए बोले—

"बीजापुर के क्या समाचार हैं, नायक ?"

"महाराजश्री, आदिलशाह का देहावसान हो गया, ग्रौर ग्रली उनका उत्तराधिकारी ····

उपस्थित समुदाय स्तब्ध हो गया किन्तु शिवाजी तो यह समाचार सुनने के लिये जैसे तैयार थे। सुल्तान पक्षाघात से पीड़ित चल रहा था।

शिवाजी ने मृत-आत्मा को मन ही मन श्रद्धांजलि दी और कहा—

"भगवान् मृतक आत्मा को सद्गति प्रदान करे।"

बहिरजी नायक ने सूचना का क्रम जोड़ा—"बड़ी साहिबा सल्तनत का कामकाज देखने लगी हैं, श्रीमान् पर उनकी वक्र दृष्टि है।"

शिवाजी मुस्कराये और आदेश के स्वर में बोले—"सूचना का क्रम चालू रहे।"

"अफजल खाँ उनका दाहिना हाथ बन बैठा है, जो नाच वह बड़ी साहिबा को नचाता है वे स्वयं और मन्त्रिगण नाचते हैं। उसकी योजना है, श्रीमान् को बन्दी बनाकर बीजापुर की परिषद् में उपस्थित किया जाय।"

शिवाजी हँस पड़े। "क्रम चालू रहे।" शिवाजी का स्वर पुनः गूँजा।

"......सुल्तान के विश्वस्त मंत्री की हत्या करवा दी है उस नराधम ने और शासन के सूत्र अपने हाथ में ले लिये हैं। बड़ी साहिबा को कठपुतली बना लिया है। बड़ी साहिबा ने इसी धूर्त के परामर्श से एक गुप्त मंत्रणा की—उनसे घोषणा करवाई...

"कहो बहिरजी हम सब सुनने को व्यग्र हैं।" शिवाजी ने कहा।

"श्रीमान् के सिर का मूल्य लग गया है। जो भी जीवित अथवा...

बहिरजी नायक फिर रुक गया।

शिवाजी ने कहा, "हम समझ गये जीवित अथवा मृतक आगे कहो।"

"उसे बीजापुर सल्तनत का प्रथम उमराव बनाया जायगा, जो सामान लूट में मिलेगा उसे राज्य नहीं लेगा।"

बड़ी साहिबा की घोषणा सुनकर, अफजलखाँ ही सामने आया,

किसी दूसरे का साहस नहीं हुआ। उसने बीड़ा स्पर्श कर कहा—"मैं इस काम को फतह करके लाऊँगा। बड़ी साहिबा ने परामर्श दिया कि "शिवाजी तिकड़मी है, रण-स्थली में सम्मुख नहीं आएँगे कुशलता और चातुर्य द्वारा या तो जीवित पकड़ लाओ या...... ! दस सहस्र सैनिकों की सेना तैयार है, खर्च के लिये कोष में होन नहीं हैं उन्होंने व्यवस्था दे दी है पण्डरपुर, तुलजापुर में जितने श्रेष्ठि और सम्पन्न हैं उनको तथा देव-मन्दिरों की सम्पत्ति लूट लो......बाजार और व्यापारी वर्ग को लूट लो। मावल-देश में जो भी देशमुख विरोध करे उसे कत्ल कर दो, उसके घर फूंक दो, इस मुस्लिम राजा की इज्जत अब तुम्हारे हाथ है।" यह कहकर बड़ी साहिबा ने अफ़जलखाँ के सिर पर हाथ रखकर विदा दी। अब वह श्रीमान् के पास आएगा।"

"हम उसका स्वागत शीघ्र से शीघ्र करना चाहते हैं। और कुछ कहना है बहिरजी नायक ?"

"वह ठहरकर आयेगा श्रीमान् ! अली के सिंहासनारूढ़ होते ही बीजापुर में अराजकता छा गई है। वहाँ अनेक दल बन गये हैं जो परस्पर लड़ते रहते हैं। सभी अधिकारी अपने-अपने स्वार्थों को फली-भूत करने में लग गये हैं।"

"ऊँह !" शिवाजी के मुँह से निकला।

"मुग़ल राजकुमार औरंजेब इस अवसर से लाभ उठाना चाहता है। उसकी समरवाहिनियाँ बीजापुर को पददलित कर देंगी।"

"बीजापुर की ओर औरंजेब को बढ़ने दो और हम......हम अपनी योजना......" शिवाजी ने कहा।

सभा विसर्जित हो गई।

बारह

चन्द्रराव मोरे परिवार का विनाश, नवराष्ट्र की प्रमुख चेतना-जाग्रति को लक्ष्य में रखकर ही किया गया था फिर भी शिवाजी का मन क्लेश अनुभव कर रहा था। इसी बीच उन्हें सूचना मिली कि उनके ज्येष्ठ भ्राता सम्भाजी को छल से अफ़जल खाँ ने मरवा दिया है तो उनकी आँखों से स्फुल्लिग निकलने लगे। प्रतिशोध की ज्वाला भभक रही थी कि उससे कैसे प्रतिकार किया जाय। वे अनमने बैठे थे कि एक चारण ने आकर उनके मन को सान्त्वना देने की दृष्टि से संत तुकाराम का एक गीत सुनाया। उसे सुनकर शिवाजी अभिभूत हो उठे। राजगुरु का पद अभी तक रिक्त पड़ा था। आध्यात्मिक धारा का प्रवाह उनकी परिषद् में भी होता रहे तो……? वे विचार-मग्न हो गये। शासकों की मदान्धता एवं सम्प्रदायवाद की विनाशकारी बाढ़ से बचने के लिये सामान्यजन किसी सन्त की आध्यात्मिक सृष्टि की खोज में निकल पड़ता है। सन्त तुकाराम व्यापारिक क्षेत्र में असफल होकर, ऋण की पाई-पाई से मुक्त होकर, वन-प्रातर में बैठ लोक-कल्याण की कामना करने लगे। अपने गीत और अभंगों में आध्यात्मिक सृष्टि करने लगे। उनके द्वारा प्रवाहित ज्ञान एवं सन्तोष की धारा में जन-जीवन स्नान कर तुष्टि पा रहा था। शिवाजी ने निर्णय किया,

उनकी परिषद् में दादाजी कोंडदेव का स्थान रिक्त चला आ रहा है, उन्होंने तत्काल अपने कुछ मंत्रियों एवं सन्देशवाहकों को उनकी सेवा में भेजा कि वे सन्त तुकाराम को सादर लिवा लावें।

सोनाजी पन्त ने जाकर सन्त .के चरणों में नमन किया—"शिवाजीराजे प्रभु के दर्शन के लिये व्यग्रतापूर्वक प्रतीक्षा कर रहे हैं। राजगुरु का पद स्वीकार कर अनुगृहीत करें। यदि धन की व्यवस्था की आवश्यकता हो तो……।"

सोनाजीपन्त पूरी बात कह न सके। सन्त ने जो कुछ सुना उससे वे बहुत कुछ समझ गये। उन्होंने कहा—"धन का प्रलोभन अब उन्हें क्या हो सकता है? भक्ति एवं साधनारूपी रत्नमणि पाकर साँसारिक द्रव्य-लोभ में क्यों घसीटना चाहते हैं शिवाजीराजे ?"

सन्त ने एक पत्र शिवाजी को लिख कर दिया। मंत्रिगण एवं सैनिक सभी लौट पड़े। उन्होंने सन्त का पत्र शिवाजी की सेवा में प्रस्तुत कर दिया। शिवाजी ने पत्र पढ़ा—

"युवराज, तुम्हारा राज-छत्र, एवं मशालें, विपुल साज-सज्जा से सुसज्जित अश्व, तुम्हारा ऐश्वर्य एवं विभूति तथा राजोचित विधि-विधान का उपयोग—प्रयोग तुकाराम के लिये सर्वथा अग्राह्य है। राजकुमार तुकाराम संसार से विरक्त हो चुका है, उसे राजभवनों में लौटने का प्रलोभन दे रहे हो? आह, तुकाराम को एकाकी विजन-सेवी के रूप में ही मौन-भाव से रहने दो। तुम, राजकुमार तुकाराम को सम्मानीय वस्त्राभूषणादि एवं सर्वोत्तम आवास देना चाहते हो उसे देकर तो अपव्यय होगा। चरागाह और वनप्रान्तर मेरे निवास स्थल हैं, शैवाल आच्छादित प्रस्तरखण्ड मेरे विश्राम स्थल हैं, आकाश मेरा परिधान है।"

शिवाजी पत्र पढ़कर दंग रहे गये। माता जीजाबाई को परिस्थिति से अवगत किया और सन्त के चरणों में मस्तक नमन करने चल दिये। पर्वत, वनप्रान्तर में खोजते फिरे त्यागव्रती संत को—आध्यात्मिक गुरु के

रिक्त आसन पर प्रतिष्ठित करने का संकल्प उन्हें कुरेद रहा था। शिवाजी ने उन्हें एक स्थल पर 'श्रीविट्ठल-श्रीविट्ठल' की ध्वनि उच्चारण करते देखा। सहस्रों नरनारी उस कीर्तन में एकत्रित थे। शिवाजी ने अपने राजसी परिधान उतार दिये और उस सन्त के चरणों में अपना मस्तक रख दिया। वे एक सामान्य संन्यासी के वस्त्र धारण कर उनके समक्ष बैठ गये। कीर्तन समाप्त हुआ तो सन्त ने देखा नवराष्ट्र का निर्माण-कर्त्ता उनकी अभ्यर्थना में बैठा है। उनके विस्मय का पारावार नहीं रहा। उन्होंने आशीर्वाद का वरद हस्त उठाकर कहा—

"कौन शिवाजी ?"

"दीक्षा दीजिये प्रभु !"

"दीक्षा ! शिवाजी क्या कह रहे हो ?" देश को तुम्हारी आवश्यकता है, लौट जाओ !"

"नहीं, प्रभु नहीं। आत्म-पीड़ा से सन्तप्त प्राणी के लिये सत्संग और भक्ति-तपस्या......शिवाजी अपना अभिमत व्यक्त करें उससे पूर्व ही सन्त ने कहा—

"शिवाजी मातृभूमि को त्रासमुक्त करने के लिये सब कुछ सहन करो। जाओ मुक्त करो जनमानस की पीड़ा को, स्वयं पीड़ा का वरण करो, संघर्षों से जूझो।"

"शिवाजी विचारग्रस्त हो गये किन्तु क्षणान्तर में ही विनयवाणी में बोले—गुरुपद स्वीकार कर कृतार्थ करें प्रभो !"

उनके मन्तव्य से सन्त बड़ी दुविधा में पड़ गये। शिवाजी तो टस से मस नहीं हो रहे थे। शिवाजी को संत के एक ही गीत ने अनुप्राणित कर दिया था। 'संसार से विरक्ति !' शिवाजी ने निर्णय की घोषणा कर दी,—"वे पूना नहीं लौटेंगे।"

"शिवाजी पूना नहीं लौटेंगे, इस निर्णय ने वायु का रूप धारण कर लिया। शत्रु-मित्र सब ने सुना। शत्रु तो हर्षविभोर हो उठे। मित्रों-

परिजनों में चिन्ता व्याप्त हो गई ! जब यह समाचार जीजाबाई ने सुना तो वे दौड़ी शिवाजी के पास गईं। सन्त तुकाराम इन क्षणों में वहाँ नहीं थे।

जीजाबाई को देखकर शिवाजी उनके चरणों पर गिर पड़े। माँ ने देखा शिवाजी संन्यासीवेश में हैं तो अधीर हो उठीं। हृदय में आकुलता समा गई, पुत्र संन्यासी ! उन्हें ध्यान आया नवराष्ट्र का स्वप्न अधूरा रह जायगा। वे ओजस्वी वाणी में कहने लगीं—"शिवा, तुमने अपने साथी-सहयोगियों को मुस्लिम-मदान्धता, साम्प्रदायिकता से देश एवं जाति को विमुक्त करने का मंत्र दिया है। उन्हें सन्नद्ध किया है और तुम......" यदि तुम अपने निर्णय से, संकल्प और वचन से पीछे हटोगे तो उनका क्या होगा ? सम्प्रदायवाद की मदान्ध आँधी उन्हें रौंद डालेगी। वे पिस जायँगे। समर्थ नेतृत्व के अभाव में वे कहाँ से कहाँ भटक जायँगे ? उनके रक्त से होली खेली जायगी। उन्हें मदमस्त हाथियों के पैरों से कुचलवाया जायगा, उनके शिशु......" और जीजाबाई का कण्ठ अवरुद्ध हो गया। वीरमाता ने कण्ठ को साफ किया, उसे तो पुत्र के कान खोलने थे, कहने लगीं—"केवल सन्त-महात्माओं की भक्ति से मातृभूमि के उद्धार की अपेक्षा नहीं की जा सकती। शूरता वीरता, रणधीरता से ही उसकी मुक्ति सम्भव है। सन्तों की प्रेरकवाणी से सहायता लो, मन में उत्साह जाग्रत करो और सन्नद्ध हो जाओ। शिवा, प्रेरणा लो, इस महात्माओं के समुज्ज्वल चरित्रों से, संघर्ष, त्याग, उत्सर्ग ने इन्हें महानतम पद दिया है। साधना-तपस्या कुछ दिवस अथवा मास की नहीं है, उनकी वर्षों की सेवा-संघर्ष का परिणाम है। शिवा यदि शक्ति नहीं होगी तो इन महात्मा-सन्तों की क्या स्थिति होगी ? शक्ति के सम्मुख ही महान् वीतरागों के प्रति शत्रु आँख नहीं उठाता, चलो, उठो ! अपनी भवानी को सम्भालो !"

सन्त तुकाराम भी पधार गये थे, जीजाबाई को इसका ध्यान नहीं था। तुकाराम ने जीजाबाई को प्रणाम किया और कहा—

"माता शिवाजी को ले जाओ, देश को इनकी अत्यन्त आवश्यकता है।"

"महात्मन् ! प्रणाम करती हूँ।" जीजाबाई ने नमन करते हुए कहा।

"विट्ठल स्वामी कल्याण करें।" सन्त वाणी से आशीर्वचन निकले।

"महात्मन्, प्रेरणा दीजिये, शिवा अपना संकल्प अधूरा छोड़ रहे हैं।"

"वत्स शिवाजी, विवेकशील अधूरा काम कभी नहीं छोड़ते। जाओ संकल्प पूरा करो, माता के आदेश का पालन करो। मातृ-शक्ति ने जो आह्वान किया है उसमें तुम्हारा योगदान अनिवार्य है।"

शिवाजी कौन खड़े थे। उनका सिर कभी जननी तो कभी सन्त के चरणों को नमन कर रहा था। एक ओर माँ, दूसरी ओर सन्त—उनका मन संकल्पों-विकल्पों में भ्रमण कर रहा था। सन्त तुकाराम नें कहा—

"शिवाजी, तुम्हें सन्त रामदास से दीक्षा लेनी चाहिये। वे ही तुम्हारे गुरु हो सकते हैं। नवीन चेतना और जाग्रति का अजस्र-स्रोत वहाँ बह रहा है। देश की पराधीनता को दूर करना मुख्य लक्ष्य है। उनका मंत्र नवयुग-नवराष्ट्र का सृष्टा है।"

शिवाजी ने सिर उठाया, सन्त कह रहे थे—

"सन्त रामदास ने बचपन में ही गृहत्याग कर दिया था, वे वैवाहिक बँधन से भाग छूटे थे। उन्होंने उत्तर-दक्षिण, पूर्व-पश्चिम, भारत के सभी तीर्थ-स्थानों का भ्रमण किया है। शिवाजी सतारा जाओ, राम-मंदिर में उनके दर्शन करो। रामदास ने शतशः मठों की स्थापना की है। सहस्रों व्यक्तियों का संगठन उनके साथ है। सामान्यजन से लेकर समर्थ संभ्रान्तजन उसमें सम्मलित हैं। वे उनको नई चेतना से अनुप्राणित कर रहे हैं।

शिवाजी के नेत्रों में चमक आ गई, जैसे नई शक्ति का संचार उनके रोम-रोम में अनुप्राणित होने लगा। उन्होंने सन्त तुकाराम के चरणों में नमन किया और विदा की अनुमति माँगी, सन्त ने सहर्ष स्वीकृति प्रदान कर दी। जीजाबाई हर्ष-विभोर हो उठीं।

शिवाजी और जीजाबाई के अश्व तीव्रगति से राजगढ़ की ओर दौड़ पड़े। मोरोजीपन्त कोर्डे, सोनाजी पन्त आदि उनके पीछे चल रहे थे।

कुछ समय तक शिवाजी पुनः अपने राजकाज में लग गये। सभी कार्य सुचारुरूप से चलने लगे किन्तु शिवाजी का मन तो आध्यात्मिक गुरु की प्रतीक्षा कर रहा था। बीजापुर से एक सन्देशवाहक पत्र लेकर आया। पुत्र के नाम पिता का पत्र। शाहजी ने लिखा था, शिवाजी तुम अपने क्षेत्र में स्वतन्त्र हो। समर्थ गुरु रामदास के दर्शन करो। उनकी विचार शृंखला और तुम्हारी कर्म-शृंखला में साम्य है। कर्त्तव्य की ओर निरन्तर अग्रसर रहो।"

शिवाजी को पिताजी का यह परामर्श शुभ लगा। उन्होंने सिंगनवाड़ी के वनप्रान्तर में प्रयाण कर दिया। वे कुछ समय पश्चात् समर्थ रामदास के स्थान पर पहुँच गये। शिवाजी ने दूर से ही साष्टांग प्रणाम किया। सन्त रामदास ने हाथ उठाकर आशीर्वाद दिया। वे प्रवचन कर रहे थे। अपार जनसमूह उनके सामने एकत्रित था—शिवाजी एक स्थान पर बैठ गये। कुछ व्यक्ति उन्हें पहचानते थे, उनमें कौतुहल जागा किन्तु कोई अपने स्थान से हिला तक नहीं। सन्त के प्रवचन का अभिप्राय था—"हम स्वजाति बान्धव शासकों, के अत्याचारों से त्रस्त हैं। हम स्वयं नैतिक, आत्मिक एवं आचरण की दृष्टि से पतनोन्मुखी होते चले जा रहे हैं। हमें आत्मशक्ति एवं साधन-शक्ति को पर्याप्त मात्रा में संचित करना है। यह हमारा अनिवार्य कर्त्तव्य है। हमें सर्व हितकारी धार्मिक भावना के प्रसार की आवश्यकता है। वही भावना राज्य साधना का स्थान ले सकती है, तभी लोक-कल्याण की सम्भावना है।

सन्त वाणी का अजस्र प्रवाह गतिमय हो रहा था उन्होंने आगे कहा—

"संयासी हो या साधु हो, रागी हो या विरागी हो, गृहस्थधर्मी हो अथवा ब्रह्मचर्य धर्म का पालन करने वाला हो, प्रत्येक का कर्त्तव्य है कि वह समाज या राष्ट्र के सन्तापों का स्वयं अनुभव प्राप्त कर उनके निवारण की निरन्तर चेष्टा करे। प्रत्येक व्यक्ति का कर्त्तव्य-धर्म है, वह शास्त्रों का अध्ययन, मनन और चिन्तन कर उसकी शिक्षा-दीक्षा से समाज अथवा राष्ट्र को पारंगत करने में—उनके सम्बर्द्धन में योगदान करे। व्यक्तिगत स्वार्थ-सिद्धि अथवा मोक्ष-प्राप्ति की कामना जीवन से विद्रोह हैं। देश के प्रत्येक नागरिक पर अपने देश अथवा राष्ट्र की नीति को स्वस्थ बनाये रखने का दायित्व होता है किन्तु उनसे अधिक आशान्वित नहीं हुआ जा सकता। बुद्धिवादियों का कर्त्तव्य-धर्म हो जाता है, वे राज-धर्म में अधिकाधिक योग दें तथा सतर्कता एवं समतापूर्वक कार्य सम्पादित करें। हमें आवश्यकता है—

'एक देव एक आशा
एक विचार एक भाषा।'

"विचारधारा स्वतन्त्र हो यह ठीक है किन्तु राजधर्म के निर्वाह के लिये उसका एक होना अधिक न्याय-संगत होता है। भिन्न-विचार-स्वातंत्र्य-धारा से उच्छृंखलता का भय हो जाता है। अनुशासन शैथिल्य न परिवार को स्वस्थ रख सकता है, न समाज और देश को। हम जो भी विचार प्रकट करें सुनिश्चित अध्ययन-मनन के पश्चात् ही प्रकट करें। विचार-सूत्रों के बिखराव से अनुशासन की ग्रन्थि भी फूट जाती है।

"हमारी भावना में साम्प्रदायिकता को कोई स्थान नहीं है, वह सर्व-संग्राही, सर्वहितदायिनी, और सर्वउत्कर्षवर्द्धिनी होगी, तभी राष्ट्र समाज और व्यक्ति का कल्याण होगा। हमारा समाज कई वर्गों से मिलकर बना हुआ है, उसके प्रत्येक वर्ग को समान अधिकार, समान

व्यवहार मिलना चाहिये । छूत-छात—अस्पृश्यता, परस्पर विभेद समाज और राष्ट्र के लिये विघातक हैं ।" समर्थ सन्त रामदास ने अपनी मनो-भावना पुनः प्रसारित की—

"कहार चमार हो या नाई,
सन्तोष पहुँचाये उसे निरन्तर ।
जो भजता है दिन-रात उन्हें,
भजक कहलाता भगवान् का ।"

समर्थ रामदास का प्रवचन समाप्त हुआ । सभा विसर्जित हुई । शिवाजी उठकर समर्थ रामदास के समीप गये । भाव-विह्वल होकर उन्होंने विनम्र वाणी में निवेदन किया ।

"गुरुदेव ! आशीर्वाद लेने आया हूँ । गुरुपद अंगीकार कर उपकृत करें ।"

"स्वस्ति ।" कहकर समर्थ ने शिवाजी की प्रार्थना स्वीकार की, वे गद्‌गद हो उठे शिवाजी ने मन की पीड़ा प्रकट की तो समर्थ ने शान्त्वना दी । उन्होंने कहा—

"मन की दृढ़ता के लिये सर्वमुखी शक्ति की उपलब्धि परमावश्यक है शिवाजी ! समाज का वर्णगत विद्वेष मिटाने की नितान्त आवश्यकता है और यह विद्वेष पारस्परिक व्यवहार, मृदु सम्भाषण से आरम्भ करना है । एक दूसरे की पीड़ा-संताप को अपना सन्ताप अपनी पीड़ा मानने से समाज का अलगाव दूर होगा । समाज को शक्तिसम्पन्न बनाने के लिये वर्णगत, वर्गगत और पंथगत विद्रोह को समाप्त कर समस्त समाज में सामंजय स्थापित करना है, छूत-अछूत के अभिशाप को मिटाना है ।"

"गुरुदेव ! जावली-काण्ड से मन में ग्लानि भर उठी है ।…"

"शिवाजी हम जावली की मुक्ति का समर्थन करते हैं । चन्द्रराव मोरे स्वराज्य स्थापना के विपक्ष में थे, आदिलशाही—अत्याचारी सत्ता

के पक्षपाती थे। विद्रोही को युद्ध करके मारना अथवा किसी अन्य ढंग से—सब न्यायसंगत है।

"शिवाजी, निर्भय होकर स्वराष्ट्र का निर्माण करो। सत्पथ पर चलो! न्याय के लिये सर्वस्व का उत्सर्ग कर दो, जीवन में भीरुता के लिये कहीं स्थान नहीं है। हम शिवाजी का पूर्णतः समर्थन करेंगे, सर्वत्र प्रचार-प्रसार करके स्वराष्ट्र के अनुयायियों की वृद्धि करेंगे। बीजापुर सत्ता में तुम्हारे समर्थकों की संख्या में निरन्तर वृद्धि हो रही है। वे तुम पर आँच नहीं आने देंगे। हम स्वाधीनता के पुजारियों के जाल सर्वत्र बिछा रहे हैं। हर क्षेत्र में वे अपने राजा शिवाजी को सहयोग करेंगे। हम यथावसर आपको सहयोग परामर्थ भी देते रहेंगे। अब जाइये।"

शिवाजी ने गुरु के चरणों में मस्तक नवा दिया। समर्थ गुरु रामदास ने हाथ उठाकर आशीर्वाद दिया शिवाजीराजे सन्तोष की श्वासें लेते हुए लौट आए।

तेरह

बीजापुर की बड़ी-बड़ी विकराल तोपें ग्राग उगाल कर भी ग्रपने सुल्तान की प्रतिष्ठा की रक्षा न कर सकीं। ग्रौरंगजेब ने बीजापुर को ध्वस्त कर दिया। राजपरिवार घेर लिया गया। औरंगजेब ने बाग-बगीचे, ग्रारामगाह, विलास सामग्री उपलब्ध होने के स्थलों का विनाश कर दिया। जिनकी उपलब्धि सर्वसाधारण के लिये न हो उसे केवल शासक-सुल्तान ग्रौर उसके अमीर उमराव ही क्यों भोगें?

ग्रौरंगजेब प्रमुख बाजार में ग्रपने सुसज्जित हाथी पर खड़ा था, उसका परिधान श्वेत था। वह अपनी स्वर्ण-मण्डित तलवार को लिये जैसे ग्रब भी तैयार था विनाश का ताण्डत करने। दूसरे हाथ में गुलाब का पुष्प था जिसे विजेता का दर्प रह-रह कर सूँघ रहा था। बीजापुर का विस्तीर्ण नगर उसकी लम्बी दृष्टि के सामने उदास पड़ा था—वह कराह रहा था।

शिवाजीराजे, क्षत्रिय कुलावतंस ने तड़ित् वेग से केवल पाँच सौ अश्वारोहियों के बल पर मुग़ल सीमान्त पर आक्रमण कर दिया, सीमान्त प्रदेश की राजधानी ग्रहमदनगर शिवाजी के अधीन आ गया। इतना ही नहीं मुग़ल अस्तबल से अच्छे पानीदार एक सहस्र अश्व भी शिवाजी के हाथ लग गये ग्रौर वे उन्हें लेकर ग्रपने सुरक्षित पहाड़ी प्रदेश में जा बैठे।

जब औरंगजेब ने यह सुना तो उसके क्रोध का पारावार नहीं रहा एक ओर विजय-दुन्दुभि बज रही थी तो दूसरी ओर सीमान्त प्रदेश निकल जाने का क्षोभ सता रहा था। औरंगज़ेब ने शिवाजी को दण्ड देने के लिये योजना बनाई। उसने अपने सैन्य नायकों को आदेश दिया "शिवाजी के प्रदेश पर तुरन्त धावा बोल दिया जाय। उस पर अधिकार कर लिया जाय। बस्तियाँ निर्जन कर दी जाँय, आग, आग सर्वत्र आग की लपटें फैलादी जायँ, जो जहाँ भी मिले मौत के घाट उतार दिया जाय।"

हाथ जोड़े सेनानायकों ने सुना, उनके माथे औरंगजेब के चरणों में झुके हुए थे। औरंगरेज पुनः गरजा—

"शिवाजी ने जिस मार्ग से आकर हमारे सीमान्त पर आक्रमण किया है उस भाग के मुग़ल अधिकारियों एवं अन्य निवासियों के सिर उड़ा दिये जायँ, बूढ़ा, बच्चा, स्त्री, बच्चे !" हमारे अधिकारी निकम्मे हैं बर्ना उस पहाड़ी चूहे की मजाल थी कि वह बेधड़क वहाँ तक पहुँच जाता, हमारे अस्तबल से घोड़े ले जाता। उनके अपराध की सजा केवल मौत है—मौत।"

बर्बरता का नग्न नृत्य करने औरंगजेब के अश्व शिवाजी के प्रदेश में प्रवेश करने दौड़ रहे थे कि भीषण वर्षा का योग उनका मार्ग अवरुद्ध करने लगा। प्रतिहिंसा की युक्तियों पर वर्षा का पानी गिरने लगा। मार्ग कीचड़ और वर्षा के पानी से भर गये। सौभाग्य ने साथ दिया। कब वर्षा समाप्त हो और कब……

इसी बीच दिल्ली से समाचार मिला—

"शहजादे, शहंशाह के दुश्मनों की तबियत नासाज है।"

औरंगजेब चौंका। एक अदृश्य कल्पना उसे घेरने लगी। उसने दुहराया "शहंशाह के दुश्मनों की तबियत नासाज है ? "और कोई खबर ?"

"वलीग्रहद शाहजादा दाराशिकोह हुकूमत का कामकाज सँभालने लगे हैं।"

स्तब्धता छागई। औरंगजेब ने ही उसे भंग किया—"वलीग्रहद दारा ?' ग्रौरंगजेब का हाथ तलवार की मूँठ पर गया। औरंग़ज़ेब और ग्रली आदिलशाह में समझौते का प्रयास चल रहा था, अफ़जलखाँ ग्राया। उसने कहा—"शहजादे ग्रापकी सभी शर्तें बड़ी साहिबा ने कुबूल फरमा ली हैं।"

ग्रौरंगजेब खड़ा हो गया। उसके सहयोगी सेनापति खड़े हो गये। "बीजापुर की सीमा से फौजें हटाली जायें। हमारा दिल्ली जाना निहायत जरूरी हो गया है लेकिन उस चूहे पर नज़र रखी जाय ! वह मौके की ताक में रहता है।"

अफ़जल लौट गया। बीजापुर को खाली किया जा रहा था। ग्रौरंगजेब दिल्ली की ओर प्रयाण कर रहा था।

किसे विश्वास था औरंगजेब बीजापुर को यों मुक्त कर देगा। इस ग्रप्रत्याशित उद्धार-मुक्ति के पश्चात् बीजापुर पुनः अपना शृंगार करने लगा। अली आदिलशाह ग्रौर उसकी माता बड़ी बेगम ने सन्तोष की श्वास ली। दिल्ली साम्राज्य के लिये उत्तराधिकार-संघर्ष छिड़ गया और उन्हें अपना भाग्य चमकता दिखाई देने लगा। बड़ी साहिबा ने ग्रपने मंत्रियों, परामर्थदाताओं को एकत्रित किया। शिवाजी पर उन की दृष्टि गई, अफजलखाँ ने विष उगला कि बीजापुर का जागीरदार होकर उसने मुग़लों का मार्ग नहीं रोका ग्रौर उसके एक भी सिपाही ने उसके खिलाफ तलवार नहीं उठाई। उल्टे वे एक हजार घोड़े खोलकर ले गये और अपनी ताकत बढ़ा ली है। हमें चूहे से सदैव के लिये छुटकारा लेना है। एक विशालवाहिनी तैयार की गई। इस सेना में तुर्की तोपें थीं जिनकी विकराल मार सुप्रसिद्ध थी। अफजलखाँ ने कहा—"मैं उस लुटेरे को, अपने ग्रश्व से उतरे बिना ही कैद कर लाऊँगा। चूहे के लिये पिंजरा ग्रावश्यक है।"

उसका दर्प-अहंकार अनियंत्रित हो गया था उसने आदेश दिया—"तुरन्त एक लौह-पिंजर बनाया जाय। हम उस चूहे को बीजापुर के बाजार में घुमायेंगे।"

अफ़जल खाँ ने बड़ी साहिबा को राजी कर लिया कि शिवाजी पर खुला आक्रमण न करके मैत्री का बहाना कर, उसे बन्दी बनाना अधिक उपयुक्त रहेगा। अफजल खाँ ने कूच के डंके बजवाये। सेना सन्नद्ध थी कि उसे ध्यान आया—विजयश्री का वरण करने रवाना होने से पहले अपने खुदा से मुराद प्राप्त कर ले और वह एक समीपवर्त्ती मस्जिद की ओर गया। जब उसने मस्जिद में प्रवेश किया तो मुल्ला चौंक कर चिल्ला उठा—"कौन है यह जिस की जिस्म पर सिर नहीं है।" मुल्ला संज्ञाशून्य हो गया।

यह देख अफ़जल घबरा गया, उसने इस घटना को अपशकुन समझा और उसने सेना का कूच स्थगित कर दिया। वह अपने निवास गया, खण्डहर हो चुका था निवास फिर भी उसका कुछ भाग बच गया था जिसमें वह और उसकी चौंसठ बेगमें रह रहीं थीं। उसने सबको एक स्थान पर बुलाया। उसकी आँखों में क्रूरता झलक आई थी। उसने आज्ञा दी—"इन सभी को पानी में डुबो कर मार दो।"

आज्ञा का पालन होने लगा उसकी तिरेसठ जीवनसंगिनियों को विवश हो जल-समाधि लेनी पड़ी। चौंसठवीं बेगम ने प्राणों के मोहवश भागने का निष्फल प्रयत्न किया, उसे तलवार का वरण करना पड़ा। अफ़जलखाँ सबकी समाधियाँ बनाने का आदेश देकर प्रयाण-वाद्य बजवाता हुआ शिवाजी से जूझने चल दिया। उसने अपनी बर्बरता की पिशाची को खुलकर खेलने का अवसर दिया। मन्दिरों को धराशायी किया, जन-जीवन को संत्रासित किया। उन्हें तलवारों के घाट उतारा और गौरक्त से देव-मूर्तियों का अभिसिंचन किया।

शिवाजी भलीभाँति जानते थे कि अफ़जलखाँ छल और प्रपंच का आश्रय लिये बिना नहीं रहेगा। शिवाजी जानते थे कि खुले युद्ध में

उस दुर्दान्त शत्रु से पार पाना दुष्कर है। मंत्रि-परिषद् विचार करने बैठी। उसमें समर्थ गुरु रामदास भी सम्मलित थे। जीजाबाई ने कहा—"जब युद्ध सिर पर आ ही गया है तो पीछे हटना कायरता है।"

"यह सत्य है हम इस आक्रमण का प्रतिवाद किसी भी रूप में नहीं कर सकते। अस्तु उसके सम्मुख मित्रता का प्रदर्शन करना अनिवार्य है, उसके स्वागत में किसी प्रकार की त्रुटि नहीं करनी चाहिये, उसकी पीठ पर मुग़ल शक्ति की छाया है। अफजलखाँ से कहना चाहिये, उचित योजना सम्मत करूँगा। स्मरण रखो शिवाजीराजे वह शक्ति बल में तुम से भी बढ़कर है। उससे मिलने के लिये जाओ तब बहुमूल्य परिधान पहन कर जाओ और अवसर पाकर उसके उदर में बघनख...... शिवाजीराजे यदि सफल मनोरथ हो गये तो समस्त राष्ट्र तुम्हारा गुणानुवाद करेगा और यदि.....पराजित भी हुए तो...... मातृभूमि के लिये कीर्तिशेष होकर अमर हो जाओगे। प्रतापगढ़ की पर्वतीय उपत्यकाओं की गोद में उससे भेंट निश्चित करो। शिवाजी नश्वर शरीर का मोह मत करना। शास्वत जीवन प्राप्त करने के हेतु इसे प्रभु की कृपा माना !" समर्थ गुरु ने परामर्श दिया।

शिवाजी ने समर्थ गुरु के चरणों में मस्तक नवा दिया। सभा विसर्जित हो गई।

अफ़जलखाँ का दक्षिणांग वाई का कृष्णजी भास्कर कुलकर्णी था, दोनों ओर से भेंट का स्थान तय करने, भेंट की योजना बनाने में कुलकर्णी का हाथ रहा। शिवाजी ने अपने प्रतिनिधि गोपीनाथ पंतजी द्वारा कहलवाया—"मुझ में लड़ने की शक्ति नहीं है। विचार-विमर्श द्वारा जो निर्णय होगा फलितार्थ होगा। आप से प्रतापगढ़ में शिवाजी भेंट कर सकते हैं अन्यत्र नहीं, क्योंकि वे भयभीत हो गये हैं। अफजलखाँ ने यह बात स्वीकार करली, वह तो एक बार शिवाजी से, एकान्त में भेंट करना चाहता था, वह जानता था यदि चूहा बिल में से निकल आया तो उसके लिये लौह-पंजर सुदृढ़ है।

शिवाजी ने श्वेत कौशेय धारण किया। उसके नीचे सुदृढ़ कवच पहना, कटि में कटार लगाई, इसकी आकृति वृश्चिक के समान थी। शिर पर लौह-आवरण अपनी पगड़ी के नीचे धारण किया पूजा-वन्दना की। अपने सहयोगियों को अपनी समुचित व्यवस्था समझा दी, शिवाजी ने कहा यदि मृत्यु का वरण करना पड़े तो……उनका मन अशान्त हो उठा। शिवाजी चल दिये। उन्होंने मोरोपन्त पिंगले, बहिरजी नायक, नेताजी पाल्सकर, काहजी जेधे को सेना के साथ नियुक्त कर दिया। ऐसी सुदृढ़ घेराबन्दी की कि मार्ग में एक पालकी जाने भर का मार्ग रह गया। शिवाजी अपने सैनिकों के साथ एक पहाड़ी पर खड़े हो गये, सहसा उन्हें माता जीजाबाई के दर्शन हुए। उन्होंने भी निर्मल धवल परिधान धारण कर रखा था—एक भिक्षुणी का वेश धारण कर रखा था। उनकी आँखें तेजस्विता से देदीप्यमान हो रही थीं शिवाजी दौड़ कर माता के पास पहुँचे और चरणरज धारण की। ऊपर नीले आकाश में कहीं कोई गिद्ध भँडराता दिखाई दिया—एक अनिश्चिता का क्षण! सर्वत्र निस्तब्धता! माँ ने निस्तब्धता भंग की, उनकी वाणी स्रवित हुई 'विजयीभव! किन्तु सावधान-सतर्क रहना शत्रु प्रबल है वह विश्वासघात से ही तुम्हारे भाई सम्भाजी का बध कर चुका है। माँ का हृदय गद्‌गद हो उठा। शिवाजी चल दिये। कहा—"विजयश्री का वरण करके अथवा आत्माहुति……?" फिर अनिश्चितता का क्षण! एक-एक पग में सतर्कता थी। वायु पीठ ठोक रही थी। पक्षी कलरव कर रहे थे और माँ का आशीर्वाद का हाथ नीले आकाश में उटा था, माँ की कटि में स्वर्ण-मण्डित कोश में कटार झलक उठी।

शिविर में अफ़जलखाँ अपने आखेट की प्रतीक्षा में घड़ियाँ गिन रहा था—एकएक पल उसको भारी हो रहा था, अन्तर का कलुष नेत्रों में, मुख पर छाये चला जा रहा था। खाँन के समीप दो अंगरक्षक थे, शर्त के विरुद्ध, पन्तजी ने खान से कहा—"शिवाजीराजे की आपत्ति है, इन सशास्त्र अंगरक्षकों को हटा दिया जाय।" वे हटा दिये गये। शिवाजी

के दोनों अंगरक्षक बाहर सतर्कता से अवसर की ताक में खड़े हो गये। यदि कोई संकट आ खड़ा हो तो वे अपना कार्य करें।

शिवाजीराजे ज्योंही भीतर प्रविष्ट हुए, खाँन ने उठकर उनका आलिंगन किया। अफ़जलखाँ ने अपनी एक भुजा शिवाजी की पीठ के ऊपर उठाकर, उनकी ग्रीवा को कसना आरम्भ कर दिया। मुक्ति पूर्ण ढंग से निकलने का प्रयास किया किन्तु दवाब पड़ता ही जा रहा था, शिवाजी ने संकट का अनुभव किया। शिवाजी ने यदि सर्पगति से मरोड़ कर अपनी भुजा मुक्त न कराली होती तो वे उस लम्बे पठान के शरीर पर निर्जीव झूल जाते। खाँन ने दूसरे हाथ से शिवाजी की कमर में झूलती तलवार खींचली और उससे उनके शिर पर आघात कर दिया, किन्तु वह प्रभाव हीन रह गया। शिवाजी ने अब अपना अस्त्र चलाया उन्होंने बघनख उसकी पीठ में घुसेड़ दिया और उसकी आँतें अपनी वृश्चिक आकृति वाली कटार से बाहर खीचलीं। खान क्रोधावेश में चीख उठा, उसके अंगरक्षक आ गये, इधर शिवाजी के जीवा महाला और सम्भाजी कावजरी भी। दोनों पक्षों में कुछ देर तक द्वन्द्व होता रहा, आहत खाँन की देह को उसके रक्षक सैनिकों ने पालकी में डाल लिया किन्तु उसकी इतिश्री करदी। खाँन का सिर एक तलवार में उठा लिया। शिवाजी ने तूर्यनाद किया। प्रतिध्वनि गूँज उठी। वनप्रान्तर में छिपी मराठा शक्ति सामने आ गई। प्रतापगढ़ से तोप अग्नि-वर्षा करने लगीं। मराठे सैनिक शत्रु-सैनिकों पर टूट पड़े। अफ़जलखाँ की तोपें प्रतीक्षा करती रह गईं। हाथी चिंघाड़ते भागे, ऊँट अपने ही सैनिकों को रौंदते भाग चले, मराठा सैनिकों ने गिनगिन कर शत्रुओं को मारा। एक युद्ध फिर भड़क उठा बीजापुरी शक्ति धूलिशायिनी हो गई। अफ़जल का पुत्र फजल अपने प्राण बचाता भाग निकला। विजयश्री ने शिवाजी का वरण किया। आशुकवि अज्ञानदास ने शिवाजी की प्रशस्ति में एक पहाड़ा रचा। माता जीजाबाई ने उस महाकवि को एक सेर स्वर्ण का हार भेंट कर दिया। शिवाजी ने अपने सहायकों को स्वर्ण और सम्मान

दोनों वितरित किये। युद्ध में जिनके उत्सर्ग हुए उनके परिवारों को वृत्तियाँ दी गईं। शिवाजीराजे का सर्वत्र जय-जय कार होने लगा। शिवाजी ने शत्रु के उन सैनिकों को क्षमा कर दिया, जिन्होंने आत्मसमर्पण कर दिया था। युद्ध में बन्दी मुल्लाओं, स्त्री-बच्चों को उनके घर सुरक्षापूर्वक पहुँचा दिया गया।

बड़ी साहिबा ने सुना तो वह व्यथित हो गईं। उन्होंने अपने कक्ष में से निकलना बन्द कर दिया और तीर्थ यात्रा के लिये मक्का चली गईं। अली आदिलशाह को भय था शिवाजी औरंगजेब के समान बीजापुर पर आक्रमण करेगा। शाहजी अब भी बीजापुर में सैनिक वृत्ति अपनाये हुए थे उन्हें शिवाजी से सन्धिवार्ता करने के लिये राजदूत नियुक्त किया। इस विजय से उनकी विशाल देह गर्व कर रही थी। किन्तु वे पराधीन थे। शिवाजी स्वतन्त्र अधिनायक थे, वे विजेता थे। जब शाहजी से मिले तो शिवाजी ने अपना मस्तक उनके चरणों पर रख दिया। गलदश्रु पिताने पुत्र को उठा कर वक्ष से लगाया। वक्ष चौड़ा, और चौड़ा होता चला गया। शिवाजी ने राजोचित पालकी में उन्हें बिठाया। प्रीतिभोज का आयोजन था, पिता भोजन कर रहे थे और शिवाजी करबद्ध उनके सामने खड़े थे। शिवाजी ने क्षमादान के लिये अनुनय किया—जिसके कारण उन्हें सुल्तान का बन्दी बनना पड़ा था, जब पितृ-हृदय ने क्षमा कर दिया तो पिता-पुत्र साथ ही भोजन करने लगे।

शिवाजी की सभी माँगें स्वीकार की गईं। उनकी स्वतन्त्रता स्वीकार की गई। बम्बई से गोवा तक समस्त समुद्रतटीय भूभाग, शिवाजी के अधीन समस्त दुर्ग तथा दक्षिणी पठार जिसका पूर्वी सीमान्त इन्द्रापुर था शिवाजी का भगवा लहराने लगा। शिवाजी ने अपनी इस विजय के पश्चात् समर्थ गुरु रामदास से भेंट की और उनकी चरण रज अपने मस्तक पर लगाई।

●

चौदह

दिल्ली के सिंहासन पर औरंगजेब अपने भाइयों की हत्या करके बैठा था। बीजापुर से शिवाजी की संधि हो गई, सुनकर बौखला उठा। वह शिवाजी के अहमदनगर पर किये गये आक्रमण को भुला न सका। उसने शिवाजी को दण्ड देने का निश्चय किया और अपने मामा शायस्ताखाँ को यह कार्य सौंपा। मुग़लशक्ति अपरिमेय थी, सुदृढ़ थी। उससे जूझना सामान्य बात नहीं थी। शायस्ताखाँ पूना के रंगमहल में रहता था। औरंगजेब ने शायस्ता खाँ की सहायतार्थ जोधपुर-नरेश जसवन्तसिंह को भेजा। मुग़ल सेना में एक लाख अश्वारोही तथा अनेक दुर्दान्त तोपें थीं। शिवाजी के सम्मुख भीषण समस्या खड़ी हो गई। बीजापुर के पश्चात् मुग़ल? शिवाजी के पास दस सहस्र मराठा-शक्ति थी। मुग़ल-सेना ने शिवाजी के प्रदेश में प्रवेश किया। शिवाजी ने पर्वत प्रदेशों में अपना निवास बना लिया, वहीं से शासन-सूत्र संचालित होने लगे।

"शायस्ता खाँ की ओर से दूत आया है, क्षत्रियकुलावतंस।" एक सैनिक ने आकर निवेदन किया।

"लिवालाओ।"

सैनिक के साथ शायस्ताखाँ का दूत आया, उसने मुग़ल ढंग से शिवाजी का अभिवादन किया। "मराठेराजे शिवाजी के पास शायस्ताखाँ का सन्देश लेकर आया हूँ।" डरते-डरते उसने निवेदन किया।

"कहो।"

"यह पत्र है।"

पत्र लेकर नायक बहिरजी ने पढ़ा। वे कुछ समय तक बोले नहीं, तो शिवाजी ने कहा, "कहते क्यों नहीं क्या लिखा है ?"

"पर्वतों में छिपे रहना बन्दर के समान का-पुरुषता है। वीर पुरुष की तरह मैदान में उतरो।"

शिवाजी ने उत्तर लिखवाया—"स्वर्ण की लंका और विशाल राक्षसी सेना को बन्दरों ने ही विनिष्ट किया था।"

दूत चला गया तो झोली-डण्डा लिये कुछ साधुओं ने प्रवेश किया। एक ने कहा—"महाराजश्री सूरत में असंख्य द्रव्य है, सेठ-साहूकार कोद्‌याधीश हैं।" दूसरे ने कहा—"शायस्ताखाँ पूना में है, यह रहा बारात का अनुमति पत्र।" शिवाजी ने अनुमति पत्र लिया और खड़े हो गये। रात्रि समय शिवाजी अपने साथियों सहित पूना पहुँच गये। नगर में मराठों की बारात की यात्रा निकल रही थी अश्वारोही दूल्हा पुष्प-मालाओं से ढका चल रहा था, रात अँधेरी थी। बारातियों ने अपने परिधान बदले और तलवारें खींचली। रंगमहल में मदिरा का प्रवाह चल रहा था और शायस्ताखाँ राग-रंग से निवृत्त हो शयन-शैया पर लेट गया था।

रंगमहल के समीप सरिता उफ़न रही थी, वर्षा चल रही थी, रंगमहल अंधकार के कारण धुँधला दिखाई दे रहा था। धीरे-धीरे वे सैनिक रंगमहल के पार्श्व में खड़े हो गये। रक्षक वर्षा वेग के कारण सो चुके थे। शिवाजी वाटिका की ओर गये और दीवार पर चढ़ गये।

शिवाजी ने अपने रंगमहल में प्रवेश कर सन्तोष की श्वास ली। उनके साथ केवल इने-गिने साथी थे, शेष वाटिका में रोक दिये

गये थे । कुछ खोजे इधर उधर की गप्पें हाँक रहे थे। कुछ रसोइये रमजान का प्रातःकालीन भोजन तैयार कर रहे थे । सरकते हुए बीस सैनिकों के के साथ शिवाजी ने प्रवेश किया । द्वार खुला था, रसोइयों को धर दबोचा उन्हें यमलोक भेज दिया । किसी के मुख से एक चीख भी नहीं निकली । रसोई-गृह तथा शयन-कक्ष के मध्य एक दीवार उनके मार्ग को रोक रही थी । शीघ्र ही दीवार में एक बड़ा छिद्र कर लिया । एक रक्षक खाट पर सो रहा था । उसे यह भेद ज्ञात हो गया वह भागा-भागा शायस्ताखाँ के पास पहुँचा, उसने शायस्तखाँ को जगाया, खाँन ने सेवक से कहा— "बबर्ची खाना बना रहे हैं । जा सोजा" इसी बीच शिवाजी आधमके और शामस्ताखाँ पर आक्रमण कर दिया, उसने अपना बिछावन लपेट लिया, बार से रक्षा हो गई । परन्तु उँगलियाँ कट गईं । सेवक ने दीपक बुझा दिया, शायस्ताखाँ अन्तःपुर में घुस गया। वहाँ भी शिवाजी ने पीछा किया किन्तु वह सेविकाओं में छिप चुका था । खाँ का पुत्र आया, उसने अपनी वीरता का परिचय दिया किन्तु मराठी तलवारों ने उसका अन्त कर दिया ।

प्रातःकाल जसवन्तसिंह ने दुर्ग पर आक्रमण किया किन्तु उनका वश न चला । शिवाजी के सामने एक हाथी लाकर उनका मार्ग रोकने की चेष्टा की । शिवाजी ने उसकी सूँढ़ काट डाली । मराठा सैनिकों ने शिवाजी का जय-घोष करते हुए मुग़ल-सैनिकों का सफाया कर दिया ।

मराठा सैनिक बढ़ रहे थे और मुग़ल सैनिकों को काटकाट कर धराशायी कर रहे थे । दिन भर युद्ध चलता रहा, रात्रि हुई मुग़ल सैनिकों ने रात्रि में प्रत्येक पहाड़ी शिखर पर अग्नि की प्रज्ज्वलित शिखायें उठती देखीं और वे जहाँ के तहाँ रुक गये, आगे बढ़ने का साहस ही नहीं हुआ शायस्ताखाँ भाग छूटा था । उसने अपनी सेना को पूना छोड़ने का आदेश दे दिया था । इस पराजय से दिल्ली-परिषद् विस्मय में डूब गई । औरंगजेब जलभुन कर रह गया । उसने शायस्ताखाँ को बंगाल भेज दिया ।

शिवाजी की धाक सर्वत्र छाये चली जा रही थी जैसे वर्षा में रात्रि को रजनी-गंधा अपनी सुवास दूर दूर तक फैलाकर मानव-मस्तिष्क को तरंगित करती है, उसी प्रकार शिवाजी की कीर्तिलता अपनी सुवास छोड़ रही थी ।

शिवाजीराजे ने सूरत के राज्यपाल इनायतखाँ के पास सन्देश भेजा कि पचास लाख रुपये की तुरन्त व्यवस्था करो अन्यथा हम सोमवार के दिन नगर में प्रवेश करेंगे । नागरिकों के पास सन्देश भिजवाया कि बादशाह हमारे विरुद्ध वर्षों से संघर्ष कर रहा है अतः हमें अपनी शक्ति बढ़ाने के लिये धन की आवश्यकता है । हम किसी को सताना नहीं चाहते । निश्चित राशि मिलने पर हम सूरत पर आक्रमण नहीं करेंगे । किन्तु किसी ओर से प्रयोजनसिद्धि न हुई । वे निश्चित समय पर आ पहुँचे और बुरहानपुर द्वार पर आ टिके । शिवाजीराजे ने अपने गुप्तचर उन श्रेष्ठियों में से कुछ के पास भेजे और कहलवाया, "शिवाजी प्रतीक्षा कर रहे हैं, यदि पचास लाख की राशि पहुँच जायगी तो नगर को हानि नहीं होगी । किन्तु कोई उत्तर नहीं । अन्त में इनायतखाँ के दो सैनिक आये उन्होंने आकर शिवाजी से कुछ विनय करने का ढोंग रचा, वे शिवाजी को कुछ ही अन्तर पर ले गये और एक ने शिवाजी की पीठ में कृपाण घुसेड़ने का प्रयत्न किया, कटार शिवाजी के लगी अवश्य किन्तु अधिक गहरा घाव नहीं हुआ । शिवाजी ने आक्रमणकारी का हाथ मरोड़ कर तोड़ दिया ।"

शिवाजीराजे की हत्या का यह असफल प्रयास था । तीसरे दिन शिवाजी ने उग्रता धारण की सूरत नगर की कतिपय अट्टालिकाओं को अग्नि की भेंट कर दिया गया । अंग्रेज और डच व्यापारियों ने अपनी-अपनी व्यवस्था कर ली थी अतः उन्हें नहीं छेड़ा गया । दो दिन में लगभग पाँच करोड़ की सम्पत्ति एकत्रित की गई । बुरहानपुर से सैनिक-सहायता पहुँचे उससे पूर्व शिवाजी जा चुके थे । इस अग्नि-काण्ड और

लूट से शिवाजी का प्रभाव बढ़ गया—मुगल-सम्राट् के वक्ष पर प्रबल आघात अनुभव किया जाने लगा ।

इस प्रकार धन-संचय कर शिवाजी को राजापुर, मालवण, बेंगुलो प्रभृति स्थलों पर आधिपत्य करने में सहायता मिली । दक्षिण में राज्य-वृद्धि की गई । शिवाजी ने वाडीकर सावंत से भवानी तलवार उपलब्ध कर उन्हें अपना सहयोगी बना लिया । बीजापुर के खवासखाँ और धुधौल के बाजी घोरपड़े भिड़ने आए तो उनके छक्के छुड़ा दिये । धन की आवश्यकता तो राज्यनिर्माण में विशेष थी ही । इस द्रव्यराशि से कितने समय काम चलता । युद्धों के कारण राजस्व की प्राप्ति सामान्य हो पाती थी ।

जब शिवाजी धन लेकर अपनी माता के पास पहुँचे तो उन्हें ज्ञात हुआ कि उनके पिता शाहजी का आकस्मिक दुर्घटना में देहान्त हो गया है । उनका अश्व आखेट खेलते समय गिर पड़ा । वे उसके साथ गिरे और उनके प्राण-पखेरू उड़ गये । शाहजी की द्वितीय पत्नी तुकाजी के पुत्र व्यंकोजीराव ने अन्तिम संस्कार किया । जीजाबाई ने सती होने का भरसक प्रयास किया किन्तु शिवाजी के आँसुओं ने उस वीर नारी का हृदय परिवर्तन कर दिया । जीजाबाई सती न हो सकीं । शिवाजी राजे का स्वराज्य स्थापना का कार्य सम्पन्न हो चुका था ।

अब औरंगजेब ने अपनी समस्त शक्ति शिवाजी के दमन में नियोजित कर दी । मुग़ल सेना का हरावल मिर्जा राजा जयसिंह को सौंपा गया । उनके अधीन दिलेरखाँ नियुक्त किया । औरंगजेब की यह योजना काँटे से काँटा निकालने वाली थी । यदि शिवाजी ने जयसिंह को किसी प्रकार नीचा दिखा भी दिया तो इस बार राजपूतों की नाक कटेगी । इससे पूर्व शायस्ताखाँ पूना में और बीजापुर का शक्ति सम्पन्न अफजलखाँ प्रतापगढ़ में दुर्गति करा चुके थे । दूसरी बात यह थी कि जयसिंह कुशल सेनानी था और शिवाजी के विरुद्ध मोर्चा लेने वाला कोई सूरमा उसे दिखाई भी नहीं देता था । औरंगजेब शंकालु दृष्टिकोण का व्यक्ति था, इसलिये उसने मिर्जा राजा जयसिंह के साथ दिलेरखाँ को लगा दिया

था कि कहीं दोनों हिन्दू होने के नाते मिल न जायें मुग़ल सल्तनत को फिर मुँह की न खानी पड़े—फिर नीचा ना देखना पड़े।

जयसिंह को सिंहगढ़ पर आधिपत्य करना दुष्कर लग रहा था। अस्तु उन्होंने पुरन्दर दुर्ग लेने की योजना बनाई। शिवाजी कारावार में थे। जब उन्हें जयसिंह के आने की सूचना मिली तो वे वहाँ से लौट आए। उन्हें भय था यदि सिंहगढ़ और राजगढ़ को जयसिंह ने ले लिया तो अब तक की सिद्धि पर पानी फिर जायगा। उनका महाराष्ट्र—नवराष्ट्र-स्थापना का स्वप्न भंग हो जायगा। दिलेरखाँ पुरन्दर की ओर गया वहाँ दुर्गरक्षक मुरारबाजी ने अपने पराक्रम से मुग़लों को छठी का दूध तो याद करा दिया किन्तु जयसिंह का पिशाची नर्त्तन सामने आगया। शिवाजी के आने के समस्त मार्ग अवरुद्ध हो गये। शिवाजी को लगा दो दशकों की साधना और संघर्ष व्यर्थ चले जायँगे ! शिवाजी को विवश हो जयसिंह के सम्मुख सन्धि-प्रस्ताव रखना पड़ा। किन्तु जयसिंह ने कहा—"शिवाजी सर्वप्रथम दुर्ग छोड़ आत्म-समर्पण करें, तब चर्चा की जा सकती है। साथ ही यह धमकी भी दी कि सन्धि की शर्तें सम्राट् द्वारा ही स्वीकार की जायेंगी।" इससे शिवाजी को बड़ा क्लेश पहुँचा। शिवाजी जयसिंह से मिलने के लिये उनके शिविर में इस विश्वास के साथ गये कि जयसिंह में अपनी पुरानी पीढ़ियों का स्वाभिमान उसके अन्तरतम:में कहीं तो छिपा होगा यदि वह जाग्रत हो गया तो हिन्दूपत-पातशाही की स्थापना का योग उपलब्ध होगा, किन्तु शिवाजी ने वार्तालाप के प्रसंग में देखा कि उनकी आशा गूलर का फूल सिद्ध हुई। शिवाजी ने कहा—

"मिर्जा राजा जयसिंह आप सदृश पराक्रमी आन, बान और प्रतिष्ठित व्यक्ति स्वधर्म और स्वराष्ट्र के प्रति इतना उदासीन क्यों है ? मुग़ल-सम्राट् जो कभी भी किसी के प्रति ईमानदार और विश्वस्त नहीं रहा आप उसकी सेवा कर रहे हैं, क्या यह लज्जास्पद नहीं है ? इससे तो अच्छा है युद्ध में लड़कर प्राणाहुति दे दें। शिवाजी की स्पष्ट

वादिता की सराहना करते हुए मिर्जा राजा जयसिंह ने अपनी विवशता प्रकट करते हुए कहा—"आपका कथन न्याय-संगत है किन्तु आज का सम्राट् सर्वशक्तिसम्पन्न है, इसलिये मैं उसका एकनिष्ठ सेवक हूँ। उसका आदेश मानना हमारा कर्त्तव्य है।"

"तब शहाजहाँ के सेवक होकर क्या आपने उसके साथ विश्वास-घात नहीं किया ? उस समय कहाँ गई थी आपकी निष्ठा ? दाराशिकोह की हत्या के लिये क्या आप उत्तरदायी नहीं हैं ?" शिवाजी ने कहा—

"वे बातें तो बीत गई हैं, उसकी चर्चा की अब आवश्यकता क्या है ?" जयसिंह के पास कोई उत्तर नहीं था जयसिंह ने अपनी झेंप मिटाने की दृष्टि से कहा।

"किये हुए पाप का फल आपको भोगना होगा मिर्जा राजा जयसिंह। उससे आपको छुटकारा नहीं मिल सकता।" शिवाजी ने व्यथित होते हुए कहा।

जब शिवाजी ने उन तिलों में तेल नहीं देखा तो चले आए। युद्ध-संघर्ष चलते रहे। शिवाजी को अपार मुग़ल सैनिकों की समर्थ शक्ति के सम्मुख विवशता स्वीकार करनी पड़ी और तेईस दुर्ग छोड़ने पड़े, शिवाजी के पास बीजापुर राज्य के तेरह दुर्ग रह गये। शिवाजी को जयसिंह ने राजी कर लिया कि शिवाजी आगरा जायेंगे और सम्राट् उन्हें अपना सम्मान देंगे।

शिवाजी को राजा मान लिया गया। शिवाजी आगरा पहुँचे तो औरंगजेब ने निर्णय के विरुद्ध आचरण किया। उनका सम्मान उनके गौरव के अनुकूल नहीं था। शिवाजी क्रोधावेश में संज्ञाशून्य हो गये। सम्राट् को उनके आचरण पर क्रोध आया और जयसिंह के आत्मज रामसिंह को उन्हें सौंप दिया। शिवाजी के साथ उनके आत्मज संभाजी भी थे। सम्राट् अपने वचन को भूल गया। शिवाजी और सम्भाजी रामसिंह की देख-रेख में बन्दी बना लिये।

सभी ओर जयसिंह को कोसा जाने लगा, इस घटना में जयसिंह

को भी दुःख हुआ। उसका प्रयत्न भी निष्फल गया, जयसिंह ने सम्राट् से कहा—"शिवाजी को व्यर्थ ही कष्ट मत दीजिये, उन्हें हानि पहुँचाने का परिणाम बुरा होगा। वचन भंग कर उन्हें दण्ड देने से राज्य के कार्यों में बाधा पड़ेगी।"

सर्वत्र शिवाजी की चर्चा चलने लगी। शायस्ताखाँ की पत्नी ने औरंगजेब को परामर्श दिया कि शिवाजी को मार डाला जाय किन्तु औरंगजेब की पुत्रियों ने सम्राट् के इस कृत्य पर क्षोभ व्यक्त किया। परामर्श दिया कि शिवाजी को समानपूर्वक मुक्त कर दिया जाय। शिवाजी ने मुग़ल-परिषद् के एक मंत्री जफरखाँ से मिलना चाहा किन्तु उसकी पत्नी ने, भयग्रस्त हो उसे मिलने से रोक दिया, उसे भय लगा कि शिवाजी उन्हें ही मार डालेंगे।

मराठा-परिषद् की व्यवस्था जीजाबाई सँभाले हुए थीं। जब समाचार वहाँ पहुँचा तो हाहाकार मच गया। मन्त्रि-परिषद् व्यथित हो उठी। वे लोग जयसिंह का, सम्राट् का विश्वासघात मानने लगे।

जब शिवाजी ने देखा कि मुक्ति के लक्षण दृष्टिगोचर नहीं होते तो उन्होंने अपना ही कुछ प्रबन्ध किया। इस बीच सम्भाजी तो परिषद् में जाते रहे। वे भी पंच हजारी के पद पर अलंकृत कर दिये गये थे। उन दिनों भेंट भेजने की प्रथा सामन्त और उच्च अधिकारियों में थी। भेंट की सूची में फल और मिठाइयाँ भी सम्मलित थीं। शिवाजी ने पहरेदारों में अपने प्रति सहानुभूति भरनी आरम्भ कर दी। थोड़े ही समय में वे उनके विश्वास में आ गये। फौलादखाँ इन रक्षकों का नेता था।

शिवाजी रुग्ण हो गये हैं यह चर्चा सबकी जिह्वा पर थी। सम्राट् को भी उनकी अस्वस्थता के समाचार मिले। उपचार की व्यवस्था हुई।······मराठे वैद्य-हकीमों के वेश में उनके पास पहुँचने लगे। जब वे स्वस्थ हुए तो दान-दक्षिणा-भेंट के क्रम चलने लगे। एक दिन दान-भेंट के टोकरों में—वे दोनों-पिता पुत्र निकल गये। हिरोजी फर्जन्द, मदारी महतर, रघुनाथ पण्डित, परमानन्द कवि सहयोग से सहरानीय रहा। सम्राट्

से जब कहा गया कि पक्षी उड़ गया है, किसी अदृश्य शक्ति ने उसका साथ दिया है तो वह विचलित हो उठा। जयसिंह ने सुना तो स्तब्ध रह गये। रामसिंह को मन में बड़ा संतोष मिला।

शिवाजी ने साधु-वेश धारण कर लिया और अश्वों पर मथुरा पहुँचे, सम्भाजी भी उनके साथ थे। सम्भाजी को एक ब्राह्मण परिवार में कुछ दिन के लिये यहीं छोड़ दिया।

…और एक दिवस सूर्य प्रचण्डरूप से हँस रहा था। जीजाबाई अपनी पूजा-अर्चना में लगी हुईं थीं। एक सेवक ने उनके समीप जाकर निवेदन किया कि एक साधु आपके दर्शन करना चाहता है। जीजाबाई ने अतिथि को बुलाया। अतिथि ने उनके चरणों में अपना सिर रख दिया। भावविभोर जीजाबाई ने उस साधु को उठाया। पूछा—"क्या चाहते हो साधु ?"

"एक सन्देश लेकर आया हूँ माता"—और इतना कह कर उस साधु ने अपना परिवेश हटा दिया—माँ और उपस्थित जन स्तब्ध रह गये। माँ के मुख से निकला—'शिवा! हर्ष और आनन्द का पारावार न था, जीजाबाई ने पूछा—"सम्भा कहाँ है ?"

उत्तर था, "वह भी सुरक्षित है।"

सर्वत्र शिवाजीराजे—क्षत्रिय कुलावंत के जयघोष गूँजने लगे।

शिवाजी और औरंगजेब की शक्तियाँ पुनः टकराने लगीं। कहीं शिवाजी की शक्ति प्रबल हो उठती तो कभी मुग़लों की। संघर्ष, झपटें चलती रहीं। शिवाजी ने राजगढ़ पहुँचकर नवराष्ट्र—महाराष्ट्र की समृद्धि, राज्य विस्तार, सुदृढ़ शक्तिशाली संगठन स्थापित किया। समुद्री बेड़ों का विकास निर्माण किया, आर्थिक समस्याओं के समाधान के लिये जैसे भी हुआ सफल प्रयत्न किए।

मुग़लों ने सिंहगढ़ पर अधिकार कर लिया था, उसे फिर अपने अधिकार में कर लिया। माता जीजाबाई तो सिंहगढ़ के बिना मराठा-शक्ति को अपूर्ण मानती थीं। इस समय मुग़ल राज्यपाल उदयभानु का

आधिपत्य था । स्थूलदेह के कारण वह पूरा दैत्य लगता था । इस दुर्ग में चन्द्रावली नामक एक दुर्दान्त हाथी भी रख छोड़ा था उसके सम्मुख जाने में साहसी भी हिचकिचाते थे ।

जीजाबाई के सम्मुख शिवाजी, बहिरजी नायक तथा अन्य वीर शिरोमणि उपस्थित थे । शिवाजी के बाल-साथी मालसुरे बड़े वीर-सुभट थे । सिंहगढ़ कौन जीते ? एक कठिन समस्या थी । मालसुरे ने जीजाबाई का चरण-स्पर्श किया और सिंहगढ़ जीतकर देने का संकल्प लिया । नारी-हृदय गद्-गद् हो उठा । जीजाबाई ने वीर का स्वागत किया । तानाजी को पुष्प मालाएँ धारण कराईं ।

जीजाबाई ने उसके भाल पर स्वयं मंगल तिलक अंकित किया । दीप-माला से वीर की परिक्रमा की । दुर्गम पर्वतीय दुर्ग पर चढ़ने को मार्ग नहीं था । सबसे आगे तानाजी और पीछे मराठा सिपाही कमन्द के सहारे चढ़ने लगे । उनके दाँत तलवारें पकड़े थीं । केवल पचास वीरों ने बारह सौ सैनिकों से टक्कर ली । उदयभानु के बारह पुत्रों ने इस संघर्ष में भाग लिया । तानाजी का आघात उदयभानु को लगा और उदयभानु का मालसुरे तानाजी को—दोनों धराशायी हो गये । और ......सिंहगढ़ पर मराठा वीरों का अधिकार हो गया । वहाँ उनका नवराष्ट्र का प्रतीक झण्डा फहराने लगा । खाली झोपड़ियों की अग्नि शिखाएँ ऊँचे गगन में पहुँच कर शिवाजी को विजय की सूचना दे रहीं हों । वे वहाँ पहुँचे किन्तु देखा तानाजी नहीं रहे । उनके मुँह से निकला, "चढ़ आलापण सिंह गेल" गढ़ तो मिला किन्तु सिंह चला गया ।

औरंगजेब व्यथित रहने लगा उसकी समस्त शक्ति मिलकर भी शिवाजी का उत्कर्ष नहीं रोक सकी । जयसिंह और रामसिंह से सम्राट् असन्तुष्ट हो गया । वह कहता था कि रामसिंह के सहयोग से ही चूहा बिल में से निकल भागा है । औरंगजेब ने जयसिंह के स्थान पर जोधपुर के राजा जसवन्त सिंह को नियुक्त किया फिर भी औरंगजेब विह्वल हो उठा । उसे मुग़लों की कीर्ति का स्तम्भ ढहता दीखने लगा । सन्धि ! सन्धि–सन्धि के अनुसार सम्राट् ने शिवाजी को 'राजा' स्वीकार किया । पूना का प्रदेश चाकण और सूपा प्रान्त भी शिवाजी को दे दिये ।

पन्द्रह

इतने विशाल राज्य की सीमाओं पर शिवाजी का अधिकार हो जाने पर भी बीजापुर अथवा मुग़ल-सम्राट् उन्हें पूना का जागीरदार ही मानते थे। अतः शिवाजी तथा उनकी माता जीजाबाई एवं समर्थ गुरु रामदास से विधिवत राज्याभिषेक की आवश्यकता समझी। समर्थ गुरु रामदास इस महोत्सव के सर्वे-सर्वा बने। शिवाजी ने अपनी मंत्रि-परिषद् के सम्मुख अपनी योजना रखी। शास्त्रीय पण्डित-विद्वान् भी उस विचार परिषद् में सम्मलित हुए। सब ने मिलकर, विचार-विमर्श के पश्चात् कहा—"शुभ मुहूर्त देखकर यथाविधि राज्याभिषेक-पूर्वक महाराज का सिंहासनारूढ़ समारोह सम्पन्न किया जाय। राज्य की राजधानी रायगढ़ घोषित की जाय। सभी लोग स्वीकार करेंगे कि भारत भूमि से परतंत्रता दूर हुई है। मुसलमानी आक्रमण समाप्त और प्राचीन आर्य-धर्म का आविर्भाव हुआ है।"

शिवाजी के विरुद क्षत्रियकुलावतंस का समर्थन भी किया गया। उन्हें सिंहासनाधीश्वर के विरुद्ध से अलंकृत किया गया। लोक-नियंत्रण तथा राज्य-व्यवस्था का वैधानिक अधिकार प्राप्त हुआ। अष्ट-प्रधानों की नियुक्ति कर उन्हें शासन सम्बन्धी कार्य-व्यवस्था सौंपी गई। ज्येष्ठ

कृष्ण त्रयोदशी, शुक्रवार शक सम्वत् १५९६ को राज्यारोहण समारोह रायगढ़ में सम्पन्न कराने की तैयारियाँ होने लगीं ।

शिवाजी को सप्ततीर्थों के जल से ब्राह्मणों ने विधिवत् स्नान कराया । इसके पश्चात् वे उज्ज्वज परिधान, पुष्पहार तथा मुकुट धारण कर राजभवन के विशाल कक्ष में पधारे । उनके साथ पार्श्व में महारानी सोयराबाई गठजोड़े में चल रही थीं । शिवाजी ने ब्राह्मणों के परामर्श से उनसे दुबारा विवाह किया था । शिवाजी के पीछे राजमाता जीजाबाई और ज्येष्ठपुत्र संम्भाजी चल रहे थे । उनके पीछे अष्टप्रधान मंत्रीगण स्वर्ण-मंगल-कलशों में गंगोदक लिये नंगे पाँव मन्थर-मन्थर गति से चल रहे थे । शिवाजी सिंहासन की ओर गजगति से बढ़ रहे थे । उन पर पन्ना तथा स्वर्ण के पुष्प-पद्म उछाले जा रहे थे । नेपथ्य में मंगलवाद्य मधुर-मधुर ध्वनियाँ निनादित कर रहे थे, शिवाजी के सिंहासनारूढ़ होते ही नगर की तोपों ने गूँजकर अभिनन्दन किया । समुद्री बेड़ों में स्थित तोपें गूँज उठीं, उनकी अनुगूँज सुदूर तक फैलती चली गईं । नगर तथा राज्य के प्रत्येक सैनिक स्थल से बन्दूकें छोड़ी गईं । सिंहासन पर कीमखाव का छत्र सुशोभित था । उसमें मुक्तमालाएँ झूल रही थीं । सिंहासन लगभग वर्गाकार था चार गज चौड़ा तथा—साढ़े चार गज के लगभग लम्बा । वस्त्र के वितान को सम्भालने वाले चार स्तम्भ स्थित थे । जब तोपों ने अभिनन्दन विधान पूरा कर लिया तो अष्टप्रधान मंत्रिगण राजस्व के विविध चिह्न लिये शिवाजी के चारों ओर खड़े थे । गंगभट्ट ने ब्रह्मा का आसन-ग्रहण कर रखा था । वैदिक विधि-विधान और परम्परायें इस समारोह के अवसर पर स्मरण हो आई थीं । वेद-मंत्रोच्चार से कक्ष गूँज उठा । पचास सहस्र ब्राह्मण अनुष्ठान में भाग लेने, विभिन्न क्षेत्रों से आमंत्रित किये गये ।

उदयपुर एवं आमेर की राज्यारोहण विधियों का समन्वय किया जा रहा था । सोलह सौभाग्यवती युवतियाँ क्षत्रियकुलावतंस की

आरती उतारने लगीं। आरती के पश्चात् शिवाजी ने धवल वस्त्रों के ऊपर बैंगनी वस्त्र का उत्तरीय डाला, स्वर्ण निर्मित था यह उत्तरीय। पुष्पों के स्थान पर स्वर्ण-रत्न जटित पगड़ी धारण की। गंगभट्ट ने साम्राज्यीय प्रभुत्वसूचक रत्नजटित स्वर्णछत्र से शिवाजी पर छाया की, सैनिकों ने ढाल एवं बर्छियों से अभिवादन किया और जनसमूह ने जयघोष से उस विशाल कक्ष को भर दिया। उसकी अनुगूँज देर तक फैलती रही।

एक हाथी सुसज्जित किया गया। स्वर्ण-मण्डित कालीन उसके दोनों ओर भूल रहे थे। शिवाजी उस पर बैठे, नगर में शोभा-यात्रा निकलने लगी। राजमार्ग जयजयकारों से गुंजित हो उठा। हाथी के आगे सैनिक दल सुसज्जित वेश-भूषा में चल रहा था। गवाक्ष और वातायनों से महिलायें अक्षत एवं पुष्प वर्षा करने लगीं, स्थान-स्थान पर सोत्साह आरती उतारी गई। राज्य-समारोहण के पश्चात् शिवाजी महाराज से अंग्रेज प्रतिनिधियों ने औपचारिक भेंट की। शिवाजी को बहुमूल्य भेंट प्रदान की गईं। इस अवसर पर अंग्रेजों ने मराठा-साम्राज्य में अंग्रेजी सिक्कों के प्रचलन की अनुमति के लिये प्रार्थना की और उनकी प्रार्थना स्वीकार करली गई।

शिवाजी ने इस अवसर छत्रपति का विरुद धारण किया। आज का दिवस महाराष्ट्र के लिये परम सौभाग्य का दिवस था। माता जीजाबाई, राजमाता कहलाने लगीं। राजमाता जीजाबाई के लिये यह दिन परम आनन्द एव संतोष का दिन था। उनकी वर्षों की साधना, चिर-संचित-निर्मित योजना एवं कामना सिद्धि के लक्ष्य तक पहुँच गईं थीं। उनका एक पुत्र जिसका निर्माण दादा कोंडदेव, समर्थ गुरु रामदास और अपने अथक् प्रयत्न-उत्साह से किया था, सिंहासनारूढ़ था—नवराष्ट्र-महाराष्ट्र का स्पप्न साकार हुआ।

जयघोष और आनन्द का साम्राज्य छा रहा था। ब्राह्मणों को स्वर्णदान वितरण किया जा रहा था।

शिवाजी ने अपना समस्त साम्राज्य समर्थ गुरु रामदास की झोली में डाल दिया किन्तु वीतराग-नवराष्ट्र के उद्घोषक समर्थ गुरु रामदास ने लौटा दिया। शिवाजी ने उनका प्रतिनिधि होकर—जैसे मेवाड़ के महाराणा एकलिंग के दीवाण के रूप में शासन करते हैं—शासन चलाया !

सिंहासनारूढ़ होने के पश्चात् भी नवराष्ट्र की सीमायें निरन्तर बढ़ती रहीं। सर्वत्र छत्रपति शिवाजी और नवराष्ट्र के जयघोष सुनाई पड़ रहे।